गांव

गांव

श्रीभगवान सैनी

श्रद्धेय (स्व) पिताश्री
दानाराम जी गौड की
पावन स्मृति मे
सादर समर्पित

अनुक्रम

शहर से लौटकर

नाम के विशाल वृक्ष की घनी छाया में टूटी-सी खटिया पर बैठे दादा आराम से हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। गुवाड़ में टाबर रम्मत कर रहे थे। रमते-रमते जब वे उपप गए तो आपस में धींगा-मस्ती करने लगे। दादा ने उन्ह झगड़ते देख, आवाज दी— अरे, क्यों उधम मचा रहे हो?'

दादा, भमिये न मरा पेड़ उखाड़ दिया।' कालू न सकारण शिकायत की।

तिनके भी क्या पेड़ होते हैं दादा? मैंने तो यह तिनका उखाडा था। भोमिये ने दादा को दिखाते हुए एक तिनका हवा में लहराया।

दादा के चेहरे पर मुस्कुराहट फैल गई। बुढ़ापे के दिन काटने का दु ख बच्चों के साथ ने दादा को कभी महसूसने नहीं दिया। इनके ऐसे झगड़े निपटाते न जाने समय कब, कैसे सरक जाता समय । दादा की नजरें समय का स्मरण होते ही अपने बचपन की ओर कुलाच भरने लगी। तब मगतू चाचा के साथ उन्होंने भी तो पेड़ लगाए थे यह नाम कितना छोटा था रोज दो बाल्टी पानी डालकर उसके ऊंचे उठते कद को निहार लिया करते थे । दादा ने नजर भरकर नाम को देखा। फिर कुछ सोचते-से बोले— बच्चो, इधर आओ। मेरे पास। आज तुम्हें एक नई कहानी सुनाऊं!'

कहानी के नाम से बच्चों में उत्साह का स्फुरण हुआ। आपस में किलौल करना बिसर कर दादा के पास बैठने की होड़ म वे दौड़ पड। दादा ने हुक्के की नाल मुह से लगाई और जोर स फूक खींची—'गुड़-कुड़ड़-कुड़ड़ फिर जैसे धुए की उल्टी की हो—'गगळ्ळ-फक्क-फुस्स— साथ ही फसी-फसी खासी का एक दौर-सा दादा क चेहरे पर चक्कर कर चला गया दादा ने धुए को नीचे धकेला था, पर धुए का गोट ऊपर उठता गया, घेर-घुमेर नीमड़े के पत्तों को बधता हुआ, अनन्त आकाश की ओर। बच्चों ने दादा के चेहरे की तरफ टोर बाध ली।

एक था मगतू। दादा की नजरें जैसे स्वप्न देख रही हों अपलक नीम की शाखाओ में खोई हुई और दादा ? जैसे किसी और लोक से बोल रहे हों।

पहले [illegible] यह कुआं [illegible] तो [illegible] [illegible] [illegible] सिर [illegible]। [illegible] था। उस [illegible] था। [illegible] [illegible] होता था [illegible]। [illegible] था। मगतू का [illegible] आता—[illegible] में दुना [illegible] और [illegible] में [illegible] जरा भी तो [illegible] [illegible] होता था [illegible] और भी [illegible] थे—[illegible] जाल [illegible], तीतर, [illegible] और [illegible] [illegible] हो गया ? [illegible] बरसात के दिनों में भी पूरा में [illegible] भरते, अगम्य गाढ़ [illegible] में [illegible] किलोलें करते और [illegible] की डार उतरता सुन्दर अलगोजे पर रागनियां [illegible] सानिया टीबों पर सोन मिरग चौकड़िया भरते। ऐसा लगता मानो धरती [illegible] शृंगार सजा मुस्कुरा रही हो। स्वर्ग की कल्पना इससे अनूठी होगी भला ?

तड़ाक! मगतू ने जोर से सांस खींचकर छोड़ा तो कोसी घाटी और टालड़ता सजड़ी की यादों से जुड़े स्मृति के तार टूट गए। बाड़ और अड़ावे-उजाड़ में नंगे पांव पावड़ा न भरो कहने वाले अकेले मिनख के कलेजे धड़काने वाले दरखत अब कहां ? झाड़िया भी लोग जड़ों से खोद ले गए। आज मगतू को हिरण छोड़ लूंकड़ी खरगोश के भी दर्शन नहीं हुए। हवा के साथ धूड़ उड़कर नये-नये धोरे बनाती चमक रही थी। इस तावड़े में आश्रय के लिए मगतू को कुछ नहीं सूझा।

कोसी घाटी के नीचे खेड़ी मगतू की मनवार कर रहा था। खेड़ा में कई खेजड़िया थीं दो-तीन झाड़िया भी मगतू को कुछ सुकून मिला। झोंपड़ा पिचक्कर पैंदे बैठ चुकी थी। उसके आगे घेर-घुमेर नीम खड़ा था। मगतू के हृदय में हिलौर उठी। वह तो उसे सिर सुदा छोडकर गया था मगर आज हक जोबन पर खड़ा मानो मगतू को झुक झुक कर नेह निमंत्रण दे रहा था। सू-सू— निमझर की सौरभ मगतू की काया में सुरसुरी चला गई। वह उतावले पग उठाते नीम की तरफ चल पडा।

मगतू नाम की ठडी छाया मे सुस्ताने लगा। लोटड़ी का तकिया बनाकर वह ठडा रेत पर पसर गया। तवे से तपे शरार पर ठडी बालू का परस गुन्गुदी करने लगा। तने की ओर से हल्के-हल्के हवा के झोंके उसे थपकने लगे और थोडी देर म ही मगतू नींद की गोद म लुढ़क गया।

झींभरी के झींभाट और चरचरी के चिचाट ने मगतू को नाद स जगाया। उसने धीरे-धीरे आखें खोलीं। सूरज डूब चुका था। पश्चिम से अधियारा धीरे-धीरे उजासे को अपने भातर समेटने में लगा था। निमयर की सौरभ वातावरण में घुल मा गई थी। मगतू ने उठकर भरपूर अगडाई ले नींद के खुमार को परे धकेला। बरसा बाद इतनी जबरा नींद और खेत की शुद्ध हवा मगतू के शरीर में एक नई शक्ति का स्फुरण कर गई। उसन लोटड़ा सभाली और गाव की तरफ बढ़ चला।

भाषण अकालो से बाथेड़ा करता मगतू धन कमाने के लिए 'परदेस' गया था। धधे की तलाश में वह नगरों-शहरों को छकता इस महानगर में पहुच गया था। ऊची आकाश से बातें करती हवेलिया, धुए के बादल बनाती आकाश में खडा चिमनिया गर्द के गुब्बार छोडती मोटर-गाड़िया और चींटिया की तरह जुलबुलाते मिनख। एक-दूसरे से निपट अनजान/असम्पृक्त। अपनेपन नाम की चीज के मगतू को यहा दर्शन हा नहीं हुए। मगतू कई दिन तक तो अचम्भित, डाफाचूक-सा रहा पर धीरे-धीरे वह भी इस जनसागर का अग बन गया।

मगतू को एक मिल में काम मिल गया था सूरज कब उगता और कब छिपता, मगतू को नहीं पता। दिन-रात मशीनों के साये में काम करते मगतू भी मशीन बन चुका था। उसे यहा पन्द्रह वर्ष बीत गए थे और खटते-खटते उसकी काया भी छूट चुकी थी। धधे में उसे फुरसत ही नहीं मिली मगर एक दिन जब शरीर ने जवाब दे दिया तब उसे डाक्टर की याद आयी। डाक्टर ने जाच करने के बाद मगतू को सलाह दी— भैया, जिन्दगी चाहते हो तो हवा-पानी बदलो। हवा शुद्ध जगल की, पेड़-पौधों की हवा। हवा ही तुम्हारे शरीर का जहर उतार सकता है।

गाव की याद मगतू के मानस में डाक्टर के शब्दों के साथ ही उभर आई। सारे दिन काम कर शाम को थके-मादे लोग टाडे में बैठते चिलम-हुक्के पीते, आपस में सुख-दुख की बातें करते। दरखतों से छन-छन कर आता हवा मन को गुदगुदाती छाछ राबडी मागी मिलती पर यहा शहर में कोई किसी का नहीं, बोलते हैं पर अपने स्वार्थ से। मनुष्य हैं मगर मशीनों की मानिंद, पेड़ भी हैं पर किसी कॉटेज की शोभा बढ़ाने के निमित्त। सब दिखावे को। हृदय से जुड़ा अपनापन और प्यार यहा कहा ? इससे तो गाव ही अच्छा जिसे मगतू गर्व के साथ कह सकता है— मेरा गाव।

गाव की याद में प्रवेश करते ही मगतू नितमगना-सा हो गया। जिन दृश्यो की बाट उसकी आंखें मार रास्ते लगता आई थी उन की कोई निशानी यहा नहा था। गाव की रगत जन्म चुकी था। दरख्तों व झुरमुट की जगह रेत के टील बन गये थे। हरे-भरे बगान-सा गाव जवानी में विधवा हुई औरत की तरह उजड़ा-सा था। गुवाड़ में अकेला बूढ़ा पीपल एमा लग रहा था मानो श्मशान में कोई पुराना छतरा खड़ा हो। उसके पास दो तीन मरियल पशु पसर पड़े थे जैसे मुर्दों की ठठरियां पड़ा हों। जीवन के दर्शन मगतू को नहीं हुए। हवा चमड़ा को जला रहा था। मगतू नर्वस हो गया।

शहर तो शहर पर गाव ? यह तो शहर से भी बत्तर हो गया। अब लोगों की हवा डॉक्टर कहा बतलायेगा निरोगा जगल और वनस्पति की हवा कहा से आएगा बादलों को कौन स्वागत कर बुलायेगा जीव-जिनावर कहा आश्रय लेगे ? मगतू को एक साथ सैकड़ा सवालों ने जकड लिया, वह चितामगन अपने झौंपड़े की तरफ बढ़ चला।



सुबह से मगतू को रह-रहकर खेडी वाला नीम और खेत की खेजडिया ललचा रही थीं। उसने मन ही मन सकल्प किया और घर से निकल पड़ा। मगतू ने पेड लगाने शुरू कर दिये। मुरदी काया होते हुए भी उसकी हिम्मत जबरी था। थोड़े ही दिनों में उसने गली-गली पेडा की गुमतियां ही गुमतियां खडा कर दीं।

गाव की एकमात्र पाठशाला के अध्यापक रामदीन मगतू का यह कार्य देखकर बहुत शर्मिंदा हुए। उन्होंने गाव वालों को सिर्फ उपदेश ही पुरसे थे— पेड़ लगाओ ! पेडों से जीवन बचेगा ! रोग को पेड़ ही रोकते हैं पेड़ वर्षा का हेतु है जीवन का सेतु है । मगर कभी पेड़ लगाया नहीं था। आज वे मगतू से मिलने उसके झोंपडे जा पहुचे। मगतू ने आवभगत की तो मास्टरजी और प्रफुल्लित हो गए। अपना और पाठशाला के बच्चों का सहयोग मगतू को देने के लिए मास्टरजी तत्पर हो गए। मगतू की जर्जर काया में अमृत का झरना सा बहने लगा।

मगतू अपने लगाए पौधों को देखता तब उसे उनमे खेडी वाले नीम का बचपन दिखाई देता और उसकी निगाहों मे उनकी जवानी के स्वप्न तैरने लगते।

जररड़-जर्रड़-धम्म। दादा हड़बड़ा गए। बच्चों की तद्रा भग हो गई। दादा की उम्र से दोगुना बूढ़ा गुवाड़ वाला पींपल चक्रवात की चपेट से जमीं पर पसरा पडा था।

'देखा ?' दादा ने बच्चा को अगुली से पीपल की तरफ इशारा कर कहा— मगतू ने अपना बात सुनी है , मगतू मरा नहीं, जिदा है। इस गाव के एक एक पेड में उसकी सासे चलता हैं—अभा तुमने उसका रुदन सुना था न—? अब तुम यहा पर फिर स पेड़ लगाना ।' दादा की बूढ़ा आखों से आसू बाहर आने को थे। उन्होंने आखें मींच लीं।

बच्चे भींत पर खिचे चित्र की तरह दादा के चहरे को ताक रहे थे। ●

सत्यमेव जयते

नमस्कार-सा बाबूजी।

नमस्कार।'

प्रत्युत्तर में एक-दो बाबुओं ने नजर उठाते हुए आगन्तुक का स्वागत किया। मैंने भी देखा—सामने यही पचास-पचपन वर्ष का लंबा-चौड़ा आत्मा खड़ा था। गोल भरा हुआ चेहरा उम्र के प्रभाव को नकार रहा था। सर के बाल ललाट पर से उड चुके थे बचे-खुचे बाल आपस में उलझे थे। मोटी-मोटी मूंछ बेतरतीबी से फैली हुई थीं। मैली-सा जैकेट और खाकी रंग का ढीला-ढाला पायजामा पहने हुए था। उसने एक बारगी सभी पर नजर दौड़ाई। इस वक्त लंच चल रहा था। आफिस कैंटीन में बाबू-चपरासी सभी बैठे चाय की चुस्कियों पर गप्पे हांक रहे थे। उसने हम में से एक का चुनाव करते हुए कहा— बाबूजी मेरा नाम सुल्तानसिंह है मैं ड्राईवर हू, अभी सेवा-मुक्त हुआ हू मेरा अंतिम भुगतान होकर पैंशन प्रकरण शुरू करवाना है।

हू , यहा पर आने वाला तो अपने काम से ही आता है आपका भी होगा आप अपने खाता नम्बर और प्रार्थना-पत्र दे दीजिए आपका काम निश्चित हो जायेगा। भवरजी ने जिन्हे इंगित कर सुल्तानसिंह ने अपना आने का उद्देश्य बताया था आश्वस्त करते हुए कहा।

चाय पीजिये ड्राईवर साहब। मैंने शिष्टाचारवश चाय का आफर किया। सुल्तानसिंह का चेहरा खिल उठा। यहा आते हुए जितनी आशंका परेशानी उनके दिलो दिमाग को बोझिल कर रही थी, दो वाक्यो में ही न जाने कहा चला गया। उम्र के लिहाज से भी सुल्तानसिंह के सामने हम बच्चे ही थे।

सुल्तानसिंह ने चाय का कप हाथ में लिया और भवरजी की तरफ देखते हुए कहा— बाबूजी वैसे तो आप सब मेरे बच्चों के समान हो पर आज मैं आपको नमस्कार करता हू आपको क्यों ? मैं आपके व्यवहार को नमस्कार करता हू।

कहने के साथ उसने एक बार सभा की तरफ हाथ जोड़ दिये। मोटी-मोटी मूंछ होठों की मुस्कुराहट के साथ कुछ और छितर गई। आवाज के साथ उसके सांस की घरघराती ध्वनि उस का आभास करा गई।

आदर की इसमें क्या बात है साहब, यह तो हमारा कर्तव्य है।' पाठक ने छूटते ही कहा।

कर्तव्य निभाना ही जिन्दगी है बाबूजी। मुसका हो देखा, मैंने अपनी बीस साल की नौकरी में कभी एक लीटर डीजल-पैट्रोल नहीं बेचा। कभी किसी सवारी को गाड़ी में बिठा कर पांच पैसे नहीं लिये। बड़े बड़े अफसरों की गाड़ियों की ड्राईवरी मैंन की है पर मजाल है, किसी से पांच रुपये लेकर किसी की सिफारिश की हो ? हमेशा सत्य का पक्षधर रहा हू मैं। सत्य की परवाह और चाहे कोई न करे, ईश्वर जरूर करता है। मैं ईश्वर की कसम खाकर कहता हू, बाबूजी, मैंने मेरा जिन्दगी में अगर किसी का भी एक पैसा गलत खाया है, तो गौ-हत्या का पाप लगे। मैंने कभी मंदिर जाकर भगवान के दर्शन नहीं किये, कभी तिलक-छापे का आडम्बर नहीं ओढ़ा, मन में ही पूजा की है और बाबूजी, ईश्वर ने मेरी सारी कामनाएं पूरी की हैं। पांच बेटे हैं मेरे, पांचों अच्छी सर्विस कर रहे हैं, एक लड़की है उसकी भी शादी अच्छे-भले परिवार में हो गई है। यह सब सिर्फ इसलिए संभव हुआ है कि मैंने सच्चाई का साथ कभी नहीं छोड़ा। अपने कर्तव्य पर अटल रहा हू।

आप ड्राईवर ही हैं या कोई और भी सर्विस की है?' पाठक ने पूछा।

पहले फौज में था बाबूजी।' सुल्तानसिंह का जवाब पाठक की शंका का समाधान कर गया। फौज के अलावा कर्तव्यनिष्ठा और सत्य के लिए लड़ने का पाठ भला और कहां पढ़ने को मिलता है?'

'आपका तो वेतन भी कम मिलता होगा? आठ-नौ सौ में पूरे परिवार को पालने में बड़ी कठिनाई हुई होगी?' चावरिया ने सुल्तानसिंह के दिपदिपाते चेहरे और ओजपूर्ण वाणी के प्रभाव से निकलते हुए आर्थिक कठिनाई की ओर ध्यान खींचा।

कठिनाई क्या हो ? सत्य और ईमानदारी का दामन पकड़ने वाले की मदद ईश्वर करता है। मैंने सभी काम अपने हाथों से किये हैं और तुम भी सुन लो औरत को कभी पैसों का भेद मत देना। वो घर चलाती है, भेद न होने पर जुगत से घर चला लेगी। अगर पैसे उसे सौंप दिये तो बस मैंने कभी अपनी औरत को नहीं बताया कि मुझे कितनी तनख्वाह मिलती है और कितनी बचती है। मेरी औरत ने भी कभी मेरी जेबें नहीं संभालीं।

जब सभालने से कौन से पैसे कम हो जाते हैं?' पाठक ने फिर टोका— पत्नी तो अर्द्धांगिनी होती है साहब, आय व्यय का पता तो उसे भी होना ही चाहिए।

होना चाहिए यह ठीक है, पर इससे उलझन घटने की बजाय बढ़ती हैं, एक की जगह दोनो परेशान हो जाते हैं और चिन्ता में औरत अपना गृहस्थी को सभालने में ज्यादा दुख भोगती है। इसलिए जहा तक हो, अगर खुद दुख पाकर दूसरे को सुख पहुचाया जा सके तो इसमें क्या हर्ज है? निश्चित रहने से वह घर का कार्य अच्छी तरह करने में समर्थ रहती है। मेरे मन में कभी किसी चींटी को भी दुख देने का खयाल नहीं आया। बस अपने कर्तव्य को ही सर्वोपरि माना। तभी तो आज मैं ईश्वर की कृपा से सुखी हू। सुल्तानसिंह का बोलते-बोलते गला सूखने लगा था। सास की गति तेज हो गई थी। मुह पर उत्तेजना की ललाई छा गई। गला तर करने के लिए उसने काउन्टर से ठडे पानी का गिलास उठाया और हलक में उडेल लिया। सास की गति कुछ स्थिर हुई तो फिर मुस्कुराहटभरी नजरें चारों तरफ फेंककर बोला— आपको एक बात बताऊ ? उस वक्त मैं एस पी साहब की गाडी चलाया करता था। साहब सुबह ऑफिस में आ जाते और मुझसे अपने बच्चों को स्कूल छोडकर आने को कहते। मैं गाड़ी गैरेज मे खडी कर बच्चों को पैदल स्कूल छोडकर आता। साहब को पता चला तो बहुत खफा हुए। पर मैने बिना हिचक के कह दिया— साहब सरकार ने गाडी सरकारी कार्य के लिए दी है, आपके बच्चों को स्कूल छोडने के लिए नहीं मैं तो इस गाडी से उन्हे स्कूल नहीं पहुचा सकता। साहब बडे गर्म हुए। मुझे खूब धमकिया दीं। मुझे गुस्सा तो बहुत आया पर उस वक्त चुप रहा। फिर एक दिन अपने मित्र की शादी मे गाड़ी ले गए। वहा से किसी दूसरे मित्र की पार्टी में चलने को कहा। मैंने सुनसान जगह पर गाडी के ब्रेक मारे साहब को गाड़ी से नीचे उतारा और बोला— साहब, जब तक आप निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, ठीक है पर आप जब सरकारी धन और पद का दुरुपयोग कर रहे हैं तो मैं अपनी ताकत का क्यो नहीं कर सकता ? इसी गाडी के टायर आपको रौंद भी सकते हैं समझे आप? साहब की कपकपी छूट गई। उसके बाद उन्होंने कभी मुझसे पर्सनल काम के लिए गाडी लेकर जाने को नहीं कहा।

सुल्तानसिंह की बात खत्म नहीं हो रही थी। लच का समय खत्म हो गया। सभी बाबू उठकर अपनी-अपनी सीट पर पहुचने लगे। सुल्तानसिंह ने एक बार फिर अपने केस को शीघ्र निपटाने का निवेदन किया और अपनी राह हो लिया। उस दिन लच के बाद हम काम में कम और सुल्तानसिंह की बातों में अधिक उलझे रहे।

सुल्तानसिंह का व्यक्तित्व हमारे लिए प्रकाश पुंज की तरह हो गया। सत्य और ईमानदारी की ताकत उस साठ-साला वृद्ध को अब भी जवान बनाये थी।

सप्ताह बीत चला था। सुल्तानसिंह अपनी उसी चिरपरिचित आश्वस्ती-भरी मस्त चाल से चला आ रहा था। उसे देखते ही कर्तव्यनिष्ठा हमारे सर चढ़कर नाचने लगी। पास आते ही उसने नमस्कार किया और देखा—भंवरजी नजर नहीं आये।

वो बाबूजी किधर गये हैं ?' सुल्तानसिंह ने मुस्कुराते हुए पाठक से मुखातिब हो पूछा।

'उनका ही क्यों पूछा, हम भी तो हैं?'

मेरे केस का पूछना था।'

'आपका केस मैं करूंगा, आप चिंता क्या करते हैं? मामला कुछ उलझा हुआ है। कई एन्ट्री नहीं मिल रही हैं। आपके ऑफिसों से कई चालान नम्बर—टी वी नम्बर मंगवाने पड़ेंगे, पर आप चिंता न करें आपका काम हो जाएगा।' पाठक ने उन्हें फिर आश्वस्त कर दिया। कुछ देर ठहर कर वे चले गए।

उनके जाने के बाद पाठक उनके केस में उलझकर रह गया। एक टेबल से दूसरी टेबल तक कागज सरकते रहे पर अन्त नहीं आया। थक कर पाठक ने उस केस को सामान्य प्रक्रिया के तहत छोड़ दिया। इस केस के चक्कर में कई केस पाठक की मेज पर जमा हो गये थे। वह उन्हें निपटाने लगा।

सुल्तानसिंह को यहां आते साल-भर हो गया है। अपने दफ्तरों के चक्कर लगा-लगा कर उसकी आधी हिम्मत टूट गई है। दफ्तर के चक्कर लगाना उसकी दिनचर्या का एक अंग बन चुका है। वार्द्धक्य के चिह्न उसके चेहरे पर निरंतर घनीभूत होते जा रहे हैं किन्तु सत्य-निष्ठा का दर्प अब भी उसके चेहरे पर दिपदिपा रहा है। जिसमें निहित सत्य एक ही बात का सूचक है कि अंततः जीत सत्य की ही होगी—'सत्यमेव जयते।

●

सपने का सच

शाम का समय था। गलिया में पशुआ के खुर मे उठा खेह आसमान में जा चढ़ा। वातावरण म शान्तिमिश्रित खामोशी व्याप रही थी। सूर्य अस्ताचल म डूब चुका था। अधेरा अपने साम्राज्य-विस्तार में रत था। अधेरा ! अनदेखे का भय मनुष्य को आदिकाल से सत्रस्त किए हुए है और इस भय स मुक्ति के लिए भी उसने अनदेखी ढाल का निर्माण किया है। इस वक्त भी उसी का द्वन्द्व मचा था।

मनुष्य भी अजब प्राणी है। सारे दिन अपना स्वार्थसिद्धि के प्रपच करता है और शाम को टाली बजाकर प्रभु के अर्पण। सुबह फिर स्वार्थ-सिद्धि की मनोकामना लिए भगवान के द्वार पर दस्तक देता है। हर बार स्वार्थ मे अधा हो वह यह भूल जाता है कि होई है वही जो राम रचि राखा। विनती करते वक्त वह अक्सर यही दोहराता है कि 'प्रभुजी मोरे अवगुण चित्त ना धरो। और अपने दिमाग के घोड़े दौड़ाते वह जिन्दगी की हर घुडदौड़ म बाजी मारने के मसूबे लिए घर से निकलता है।

तमूरा भी अपने झौंपडे मे भक्ति में लीन बालाजी की मनौता कर रहा था। तमूर की उम कोई पैंतीस के आसपास रही होगी, पर देखने में चालीसी पार किया हुआ लगता था। घना-लम्बा दाढ़ी-मूछो में चेहरा छुपा हुआ। कधों पर झूलते बाल। माथे पर लम्बा सिन्दूर का तिलक और सिर पर लाल कपडे की पट्टी इस तरह बधी हुई कि माथे के बाल आखों पर न आ पावें। छरहरी काया और गले म कई किस्म के गण्डे-ताबीज। पूरा हुलिया सन्यासी-भक्त जैसा ही था। इस वक्त झौंपडे के दरवाजे की तरफ उसकी पाठ थी। सामने बालाजी की तस्वीर के आगे घी का दापक जल रहा था। दीपक के पास ही ताजा जल कण्डों के अगारों का धूपिया रखा था। तमूरा चम्मच से धूपिये पर घी होम रहा था। वह मन ही मन बालाजी स विनती कर रहा था— बालाजी महाराज पधारो आज आपके यहा देरी क्यों ? दूसरों के वक्त तो झटपट आ जाते हो आज तो आपके भक्त को दरकार है ! मनौता मनाते मनाते धूपिये पर राख की पर्तें चढ़ने लगीं। तमूरे न फिर घी डाला। बालाजा महाराज ! आपने यों हा समय लगाया तो यह घा भा लखे लग

जाएगा मैं आपके जोत (ज्योति) किए बिना उठने वाला नहीं हू देखता हू, कब्र तक नहीं आएगे ? बुझते अगारों को चिमटे से हिलाकर राख झाड़ तमूरे ने नगोलग तीन-चार चम्मच घी होमा। धूपिये को दीपक की तरफ कुछ और सरकाया। बालाजी भी भला भक्त की जिद् के आगे कितनी देर ठहरते ? दीपक की लौ नीचे झुकी और धूपिये पर धप्प-धप्प करता जलने लगी। तमूरे न दोनों हाथ जोत के ऊपर से फिराकर अपनी आखों से लगाए। लाल कपड़े की पोटली में बधे आखे (जुवार के दाने) खोल कर धूपिये के सामने रखे। अब तमूरे का काम पूरा था। उसने आखें बद कर पलक लगा ली। काफी समय ध्यानावस्था में रहने के बाद उसे लगा जैसे हाथी के हौदे पर बदर बैठा है। उसके गले में फूलों की माला है। मौहल्ले-भर के कुत्ते उसके पाछे उछल-उछल कर भौंक रहे हैं। उसके बाद लापालाप। तमूरे ने झट आखें खोली। जुवार को समेट कर पोटली में बद किया और झालर बजाकर आरती करने लगा।

झौंपड़े के सामने ही चार लकड़िया रोपकर उनके ऊपर कुछ आडी-टेढ़ी लकडिया डाल और घासफूस से छाया का प्रबध किया हुआ था। तमूरे की घरवाली ने वहा रसोई बना रखी थी। इस वक्त वह रोटिया सेंक रही थी। तमूरा पूजा समाप्त कर सीधा चूल्हे के पास आ बैठा। घरवाली ने थाली में सब्जी-रोटी डालकर थाली तमूरे की ओर सरका दी। तमूरा आज के दृष्टात की लड़िया पिरोता खाता रहा। रोटी के निवाले हाथ और मुह के माध्यम से पेट में पहुचते रहे। हमेशा से दो रोटिया अधिक खाने के बावजूद मना नहीं किया तो घरवाली को आश्चर्य हुआ। क्या बात है ? नशे के तो कभी पास से भी नहीं गुजरते फिर ?'

'रोटी और दू पेट भरा नहीं क्या ? थक्कर उसने पूछ लिया।

'नहीं, रहन दे, ला पानी दे दे।

'आज भूरा अच्छा लगा था क्या ?' पानी का लोटा देते उसने फिर कुरेदा।

नहीं तो !' तमूरा इतना ही बोला और उठकर झौंपडे के आगे खड़े माचे को बिछाकर उस पर लेट गया। उसकी सोच आज के दृष्टात का मतलब निकालने के लिए भटक रही थी। घरवाली ने उसके चेहरे पर कई बार खोजा नजरें दौड़ायीं पर उसे कुछ भी हाथ न लगा।

☐

मनुष्य अपने सम्पूर्ण कौशल के साथ जब कार्य को अजाम देने में असफल हो जाता है, तब उसे अलौकिक शक्ति का स्मरण हो आता है। अपने बौद्धिक हथियार डालकर किसी चमत्कार की आशा में दिव्य शक्तियों के सामने समर्पित हो जाता

है। मनुष्य । मार ग्याज जिन मार पर पग्गार नर हा जात हैं यहीं म अध्याम और आत्म नादि की गिरियां गुलता हैं। आत्मा और परमात्मा ता दर्शन यहा म शुरू हाता है।

जाता तान जाता हैं कि तमूरा बालाजा का भक्त कैसे बना? हारा बामारा म जब तमूरा जकड़ा ता लगा कि गन्धिया त्याड़न का नाम हा नहा निया। घर वाल इलाज करता थक गए पर तमूर की सासें नहा थकीं। घोषित म ता उस टा बा था मगर उसका मर्ज की त्वा डाक्टर क पास नहा था। हर त्वा तमूर क शरार में बअसर हा रहा थी। सभा की आशाए टूट चुकी था पर तमूरे की घरवाला ना धारज नहा छाड़ा। गन्धिया क पास वह हर वक्त मुस्तैद था। वह उसकी अर्धांगिना था। अपना आधे अग का छोड़ जिलग कैसे हाता? मृत्यु अटल सत्य है। पर मृत्यु का इन्तजार किसा किया है ? अगर मृत्यु का शाश्वत मान जावन का माह छोड़ दिया जाए ता जिन्दगी क्या होगा? विधवा हान क खयाल मात्र से हा उसका सर्वांग शिथिल पड़ जाता है। वह इस सोच स मुह फेर तमूरे की जिन्दगा तलाशन लगता। बामारा स अत आकर तमूरा भा मौत को बुलान लगा पर वह ता हर पल उसकी जिन्दगी के लिए हा मनौती मना रहा थी। आखिर जब डाक्टर न भी हाथ ऊपर कर दिए तब उसके पास कोई चारा न रहा। वह उसे घर ले आई।

मरणासन्न टी बा के मराज के साथ कौन रह? घर वालों ने घर के पास बाड़े में बने झौंपड़े म तमूरे को जगह दे दा। बाड़े में झौंपड़े के सामने हा रोटिया बनाने के लिए खींप लकडिया रोप कर रसोईघर का प्रबन्ध तमूरे की घरवाला ने हा किया। झौंपडे म तमूरे की खटिया डाल दी गई। अब मृत्यु की घडिया गिनना हा बचा था। पर हारे को हरि नाम। तमूरे के मन में दबी जीवन के प्रति लालसा ने उसे बालाजी का स्मरण करवाया। उसने मन ही मन सकल्प किया कि प्रभु अगर मैं ठीक हो जाऊगा तो हमशा आपके घी का दापक जलाऊगा। तमूरे ने झौंपडे म बालाजी की फोटो टाग ली। हर वक्त हनुमान चालीसा और सकट मोचन का पाठ करता और फोटो के दर्शन। घरवाली ने उसकी चाकरी में कोई कसर नहीं छाड़ी।

प्रकृति के रहस्यों को कौन समझ पाया है ? जिस तमूरे के बचने के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे, वही तमूरा धारे-धारे स्वस्थ हाने लगा। आठ दस महीनों में वह भला-चगा हो गया। ठीक होकर जब तमूरा झौंपडे से निकला तो वह खुद किसी साधु सन्यासी से कम नहीं लग रहा था। लम्बे-लम्बे बाल दाढ़ी-मूछों स एकाकार हो चुके थे। तमूरे ने इस जीवन को प्रभु का प्रसाद मानकर लोगों की भलाई और भक्ति का प्रण लिया। तमूरा बालाजी के घी का दीपक जलाकर हमेशा पूजा-पाठ करता रहा। इसी क्रम म न जाने कब उसे दृष्टात दिखलाई देने लगे और कब उसने लोगों की भलाई के लिए उनके जाख देखने शुरू कर दिए। अब आलम

यह था कि अपने आखे दिखलाने वालों का तमूरे के घर सुबह-शाम ताता लगा रहता था। किसी का कुछ खो गया तो आखे, बच्चे ने दध न पाया तो आखे। तमूरा उनके आखे बालाजी के सामने रखता, जोत करता। फिर जैसा भी दृष्टात दिखलाई देता, उसका अपनी अक्ल अनुसार मतलब निकालकर बतलाता। भक्त भभूत का टीका लगा कर अपने घरों को लौट जाते।

ऐसा नहीं है कि तमूरा सिर्फ आखे ही देखता हो, आखे तो वह पूजा के वक्त भक्तों की भलाई के लिए ही देखता था। पेट पालन के लिए शादियों के मौसम मे साई (अनुबध) पर मिठाइया बनाने का काम करता था और जब साई नहीं होती, तब रेहडी पर चाय बनाता और मूगफली बेचता। आखा देखने का वह किसी से कुछ नहीं लेता था। जाखे भी पक्षियों के चुग्गे हेतु डलवा देता था।

❏

आप भला तो जग भला। तमूरे से भला कौन? इसका पैमाना तो चुनाव ही है। तमूरा सब के लिए आधी रात को भी तैयार रहता है। क्या लोग भी उसके लिए तैयार होंगे? इसका पता कैसे लगे ? तमूरे को तरकीब सूझी। उसने बालाजी का दीपक जलाया। आखे रखे और जोत की। हमेशा लोगों के ही आखे देखे थे, आज उसके अपने थे। पर आज का दृष्टात भी अनोखा था। तमूरा उसका अर्थ तुरत न लगा सका।

माचे पर पड़े-पडे तमूरा सोचता रहा। हाथी के हौदे पर बन्दर बालाजी इस कलियुग में उनका भक्त यानी मैं गले में फूलों की माला विजय का निशान उछलते-भौंकते कुत्ते आदमी ! तो बालाजी महाराज, इस बार मैं ही पच बनूगा । तमूरा हर बार आखे देख कर ऐसा ही गणित फलाता है और पूछने वाले का बताता है।

तमूरे ने आखों के आधार पर परचा भर दिया। उसके सामने वकील साहब थे। अलबेले धधे की अथाह कमाई। उन्हें बहुत रीस आई। बच्चों को भेजकर तमूरे को घर बुलवाया। और पूछा— तो तमूरे तुम चुनाव लड़ोगे ?'

हा। तमूरे ने हुकारा भरा।

'किस बूते पर? क्यों पैसे बर्बाद करते हो?'

बर्बाद क्यों? मैं जीतूगा। सारे मौहल्ले वाले मेरे साथ हैं। आपसे सौ गुना अधिक लोग मेरे पास आखे दिखलाने आते है, मैं आपकी तरह उनसे फीस नहीं लेता। फिर भी आप मेरा बूता पूछ रहे है। सबसे मेरा अपनापा है।

'तमूरे, मेरा भा तुम से अपनापा है। इस कारण से ही तुम्हें कहता हूं कि मेरे पक्ष में बेठ जाओ। नहीं तो हारोगे और आखे देखना भी भूल जाओगे। चुनाव और आखे नैना बहुत अलहदा बात हैं। तुम्हारे माड के लिए तो माथे फूटते हैं और चेपने को चावल चाहते हो? ऐसा कहा सभव है? फिर बालाजा भी यह कहा चाहेंगे कि उनका भक्त भी हम झूठ-साच करने वालो म मिल जाए?'

आप मेरी फिक्र छोडिए वकील साहब! यह तो समय ही बताएगा। अच्छा जै बालाजा की। तमूरा कुछ कठार होकर चला आया।

चुनाव का चक्र चलने लगा। लाग तमूरे के पास आते। वोट उसी को दने का आश्वासन देते। बालाजी के भभूत का टीका माथे पर लगाते और वकील साहब के घर की ओर निकल जाते। वकील साहब के यहा हलुआ पूडी खाते। शराब पाते, रग जमाते और अपने घर चले जाते। नताजा घोषित हुआ तब तमूरे को पता चला कि बालाजी के सच्चे भक्त तो सवा पाच ही नहीं थे।

किकर्तव्यविमूढ़-से तमूरे ने शाम को फिर बालाजी की जोत कर अपने आखे देखे। फिर वही दृष्टात ! हाथी के हौदे पर बदर और उसके पीछे उछलते-भौंकते कुत्ते ! वह फिर सोचने लगा— बदर वकील कलाबाजियों मे बदर से कहा कम है ? और ये आदमी जहा रोटी दिखलाई दे वहीं दौडे चले जाते हैं ठाक कुत्ते की तरह! तमूरे को खुद पर ही गुस्सा आया। प्रभु की लीला तो प्रभु ही जाने। उसकी बिसात ही क्या है जो उनके दृष्टात का मनचाहा अर्थ निकाले ? आज तक क्या उसने प्रभु की भक्ति को अपनी अक्ल के अनुसार नहीं दिखाया ? अगर वह ही इतना सक्षम है तो फिर आखा की भी क्या जरूरत ? नहीं वह आज से किसी के आखे नहीं देखेगा। हे महाराज इस बार माफ कर दो फिर ऐसी गलती नहीं करूगा ।

तमूरा झालर बजा कर आरती करने लगा। शाम के शान्त वातावरण में झालर की सुरीला झकार गूजने लगी और तमूरे के हृदय में ज्ञान का नया प्रकाश फैलने लगा। ●

अंकल, फिर कब आओगे?

कुरडाराम का पुश्तैनी धंधा तो खेती का था, परन्तु भाइयों में बटवारा होते-होते खेत की जमीन बाड़ों में तब्दील हो गई। खेती के लिए जब जमीन का टोटा पड़ गया तब कुरडाराम ने अपनी पढ़ाई और अक्ल को सजाकर ठेकेदारी के धंधे में कदम रखा। आज उसकी गिनती माने हुए ठेकेदारों में थी। शहर के रईसों और सरकारी इमारतों के ऐसे कौन से ठेके थे जिन्हें कुरडाराम की इच्छा के विपरीत छोड़ा जा सके? पर अपनी इस जिन्दगी से कुरडा यदा-कदा वक्त निकालकर अपने परिवार की सुध लेने के लिए झांक लिया करता था। अपने दो भतीजों को कॉलेज में पढ़ा रहा था और रितु तो उसकी जीवन जेवडी ही थी। किसी चीज की फरमाइश तो वह करती ही नहीं थी पर, कुरडा था कि जिस वस्तु पर उसकी नजर पड़ती उठा लाता। लोगों की नजर में कुरड़ा अच्छा इन्सान था तो बच्चों की इच्छानुसार ऐसा पिता सभी को मिले।

कुरडाराम के घर आज अच्छी चहल-पहल था। शहर के माने हुए लोग आये हुए थे। आज रितु का जन्मदिन मनाया जा रहा था। रितु आज पूरे सात वर्ष की हो चुकी थी। मौहल्ले के साथी बच्चों का हुजूम उसे घेरे हुए था। वह उन्हें चाव से अपने खिलौने दिखला रही थी।

यह क्या है? एक बड़े कार्टून की तरफ इशारा करते हुए रामू ने पूछा।

'देखती हूं, पापा क्या लाए हैं। रितु ने डिब्बा खोला। भीतर खिलौना रेल की पटरियां और डिब्बे थे। सभी बच्चों ने मिलकर पटरियां बिछाई। डिब्बे से डिब्बा जोड़कर इंजन लगाया। रितु ने चाबी भरकर छोड़ी तो इंजन पटरियों पर चल पड़ा पिछले डिब्बे से गार्ड की झंडी हिल रही थी और सीटी बज रही थी। इंजन से ड्राईवर का मुंह बाहर-भीतर हो रहा था। गोलाकार पटरियों पर रेल चक्कर काटने लगी। बच्चों के कौतूहल का कोई छोर नहीं था। ढोलक बजाता बंदर, पानी गटकती बतख और अनेक तरह के खिलौनों का संसार उनके आस-पास बिखरा हुआ था। सभी अपनी-अपनी रुचि अनुसार खेलों में मगन थे। रितु रेल के खेल में खोई हुई थी। ड्राईवर तो पापा हैं डिब्बे मोहन-मुकेश और खुद रितु

गार्ड मम्मा ' पापा गुर सुच कर डिब्बों तथा गार्ड का निरीक्षण ला कर लत हैं, पर गार्ड की इच्छानुसार गाड़ी रोकते नहा इस रेल म रितु को अपन परिवार की हा झलक दिखाई दी।

य सारे खिलौने तुम्ह आज हा लाकर दिए? गौह ने आश्चर्य स खिलौनों के ढेर को देखत हुए पूछा।

हा। मेरे पास और भा बहुत हैं —गुड्डा-गुड्डा, मोर-कबूतर ' रितु रेल के चक्कर स निकलता हुई बोली।

वो तो मैंने पहले भा देखे हैं।' रामू बाला।

वो तो मेरे पास भा है।' कालू न अपना हैसियत दर्शाई।

तेरे पापा तुझे बहुत प्यार करते हैं न रितु? रामू हसरत से रितु और उसके खिलौनों को देखते बोला।

हा, बहुत इतना सारा। कहते हुए रितु ने अपने दोनों हाथों को फैला दिया।

रितु का घर, घर क्या हवेला ही था। नाचे की मंजिल में एक बडा हाल तथा चारों तरफ कमरे थ। एक बडा कमरा जो बैठक के रूप में था तथा बाकी क कमरों म घरेलू नौकर रहत थे। ऊपर की मंजिल मे रितु का परिवार था। रितु उसके मम्मा-पापा और कुरडाराम के दोनों भतीजे कुल पाच प्राणी थे। इस मंजिल की बनावट भा नीचे की मंजिल की तरह ही थी। इस वक्त कुरड़ाराम ऊपर की बैठक म अपने साथी ठेकेदारा-अफसरा के साथ बैठा था। रितु अपने कमरे मे अपने साथियों के साथ खिलौनो के खेल में रमी हुई था।

दीपू प्रोफेसर के साथ कुरड़ाराम की हवेली मे घुसा। उसे रितु के जन्मदिन की जानकारा नहीं थी। कुरड़ाराम के कार्ड प्रेस में छपने के लिए दिए हुए थे। प्रेस मालिक दीपू का मित्र था तथा दीपू की कुरडाराम के साथ अच्छी घुटती थी। प्रोफेसर भा दीपू के अच्छे मित्र थे। प्रेस मालिक ने जब दीपू से कुरडाराम के कार्ड देने का कहा तो वह मना नहा कर सका और प्रोफेसर के साथ कुरडाराम के घर आ पहुचा। हवेला के ठाठ-बाट देख प्रोफेसर उसके भातर रहने वालो की हैसियत मन ही मन तय करने लगे। दीपू का इस हवेली की पूरी जानकारा थी। वह प्रोफेसर के साथ सीधा कुरडाराम की बैठक में पहुचा। कुरडाराम ने दीपू के साथ अपरिचित व्यक्ति को देखा तो उठकर आवभगत की। उसका साथियो के साथ शराब का दौर खत्म हो चुका था और वे सभा हॉल मे आ गये थे। बैठक में सिर्फ कुरडाराम दीपू और प्रोफेसर ही थे।

'आया। वहन व साथ हा मुकेश ट्रे में बोतल और ग्लास लिए घुसा। टेबल पर ट्रे रखकर मेहमानों की तरफ देखते ही उसकी निगाहें नीची हो गई।

नमस्कार सर। कहते हुए उसने प्रोफेसर की तरफ हाथ जोडे और गर्दन झुकाए एक तरफ खड़ा हो गया।

आप शराब लेंगे या बीयर मंगवाऊ? कुरड़ाराम ने पूछा।

प्रोफेसर इस मामले में पूरे भक्त हैं, ठेकेदार। प्रत्युत्तर दीपू ने दिया।

मेरे लिए नल का पानी ले आओ मुकेश। प्रोफेसर होठों में ही मुस्कुराते हुए बोले। दीपू और कुरड़ाराम पैग बनाने लगे। मुकेश पानी ले आया। प्रोफेसर पानी पी कर सोफे से टेक लगाए आराम की मुद्रा में बैठ गए। मुकेश की नजरों में उनका आदर कुछ और चढ़ गया था जिससे उसकी पलकें बोझिल हो गई। वह बैठक से निकलकर हॉल में चला आया। सारे मेहमान आ चुके थे। केक कटाने का इन्तजार सभी को था। कुरड़ाराम ने दीपू और प्रोफेसर को न्यौता देते हुए कहा—आओ, हॉल में चलें आज रितु की मम्मी यहां नहीं है, वह अपने पीहर गई हुई है। उसकी अनुपस्थिति में पूरा पार्टी का अरेंजमेंट मुझे ही करना पड़ा है। बताइये कहीं कुछ कमी तो नहीं रही?

नहीं जी, आपके किए हुए कार्य में कमी कहां ठहरेगी? दीपू ने बड़ाई की। प्रोफेसर की नजर में सबसे बड़ी कमी तो रितु की मम्मी की गैर मौजूदगी ही थी पर वह बोले नहीं।

कुरड़ाराम ने हॉल में आकर रितु को बुलवाया और केक कटाने की रस्म पूरी की। मेहमान अपने-अपने उपहार रितु को दे हॉल में कुर्सियों पर जम गए। भोजन की व्यवस्था पूरी थी। खाना खा कर व कुरड़ाराम से विदा ले अपने-अपने घरों को जाने लगे। रितु के दोस्त भी अपने-अपने माता-पिता के साथ जा रहे थे। घर में धीरे-धीरे सूनापन घर करने लगा। रितु अब निपट अकेली थी। अकेले में खिलौनों से भी कितना दिल बहलाता? उसके मन में भी हॉल की तरह उजड़ा हुआ सूनापन बसने लगा था। हाल में अब भी कुरड़ा ने दीपू को रोक रखा था और उसके कारण प्रोफेसर को भी बैठे रहना पड़ा।

यों क्या ठंडे बैठे हो यार, एक पैग तो और ले लो । फिर साथ ही खाना खाएंगे।' कुरड़ाराम ने दीपू से फिर आग्रह किया।

हम जिस काम से आये थे वह तो भूल ही गए। लीजिए ये कार्ड। ज्यों ही फुरसत हुई दीपू को कार्ड याद आए।

गाह जुत अच्छा छा है। यार नीपू इस प्रस की तारीफ करना ही पड़ता है।'

अच्छे तो होंगे ही भई, नके पाछे प्रोफेसर जैसे विद्वानों की साथ रहती है।'

प्रोफेसर साहब, आपसे परिचय का मौका ही नहीं मिला, माफी चाहूंगा। फुरसत होती तो बातें करते। आपने बुरा तो नहीं माना न ?

मैं आपके मुकश वाले कॉलेज में हू।' प्रोफेसर ने अपना परिचय दिया।

प्रोफेसर क्या परिचय देंगे ठेकेदार , इन जैसा भला आत्मा परिचय का मोहताज नहीं होता यह मेरे मित्र हैं, इतना ही मेरे लिए गर्व करने को काफी है इनके दिमाग का कोई जोड़ नहीं है, भलाई में देवता भी इनसे काफी पाछे हैं सच बताऊं ठेकेदार ' मैं मन ही मन इनके उस रूप की पूजा करता हू। दीपू ने अंतिम शब्द मानों किसी गहरे राज को बताने के अंदाज में फुसफुसाये। नशे के सुरूर और भावातिरेक से प्रोफेसर के लिए कातर सम्मान उसकी आखों में झिलमिलाने लगा था।

भोजन लगाओ भई। कुरडाराम ने नौकरों को हुक्म दिया।

मेरे लिए नहीं। प्रोफेसर ने मना किया।

क्यों, हमारा भोजन अच्छा नहीं है क्या ? माना कि आपको बुलावा नहीं था पर आपसे परिचय भी तो नहीं था। इसमें मेरा कोई दोष हो तो कहिए ?

ऐसी बात नहीं है मैं सिर्फ खिचड़ी ही खाता हू।

प्रोफेसर ठीक कह रहे हैं, डा की हिदायत के अनुसार आजकल ये साधारण भोजन लेते हैं, दवाइया ले रहे हैं। दीपू ने प्रोफेसर की बात का समर्थन किया।

'ठीक है, प्रोफेसर साहब, आज की जाने दीजिए। मगर अब आप हमारे हैं आते रहिएगा, आपका ही घर है फिर कभी सही।

कुरडाराम और दीपू खाना खाने लगे। प्रोफेसर अलग बैठे रहे और पानी के सिवा कुछ नहीं लिया। रितु के हृदय पर उदासी ने अपना डेरा जमाना शुरू कर लिया था। किसी को उसकी परवाह नहीं थी। प्रोफेसर यत्र-तत्र उसके चेहरे पर नजरें डाल रहे थे फूल-सा खिला चेहरा अब मुरझा गया था। वह कभी कभी अपने पापा की तरफ देख लेती थी और इस क्रिया के बाद उदासी कुछ और घनाभूत हो उठती थी।

रितु को क्या हुआ ? दीपू की निगाहें ज्यों ही रितु के उदास मलिन चेहरे पर गईं तो उसने पूछ लिया।

'हैं-अ—, ऐ रितु इधर आना!' कुरडाराम ने उगुली के खड़ इशारे से रितु को बुलाया। उसकी आख नशे की अधिकता से लाल हो रहा थी। वह डरती हुई निकट आई।

क्या क्या बात हे, क्या हुआ तुम्हे ? कुरडाराम की लट्ठमार आवाज गूजी।

कुछ नहीं पापा। रितु सहमे हुए बोली।

'जा खेल। कुरडाराम ने फिर खडी अगुली से इशारा किया। रितु अपनी जगह जा बैठा। उदासी के साथ सहमापन भी उसके जेहन पर हावी हो चुका था। वह चोर नजरो से पापा और दीपू की तरफ देख रही थी।

'आप कहें तो मैं पूछू?' दीपू की सवेदना ने फिर करवट ली।

ऐ रितु! इधर आ, अक्लजी के पास।' कुरडाराम की आवाज में ऐसा खरास थी मानो थानेदार ने किसी चोर को बुलाया हो। रितु गर्दन झुकाये दीपू के पास आ खडी हुई।

क्यों बेटा उदास क्यों हो क्या बात है? दीपू ने प्यार से रितु के सर पर हाथ फिराते पूछा।

'कुछ नहीं, मैं तो ठीक हू। शायद रितु को शराब की गध रास नहीं आई। उसने मुह घुमाकर उत्तर दिया।

कुछ तो है बता बेटा क्या चाहिए?'

कुछ नहीं अकल।' रितु धीरे-से बोली।

'ठेकेदार, यार प्रोफेसर से कहो यह पूछेंगे तो रितु जरूर बताएगी। प्रोफेसर साक्षात् ईश्वर का रूप है दीपू की याचक दृष्टि कुरडाराम के चेहरे पर थी।

हा हा आप पूछिए प्रोफेसर।'

कुरड़ाराम से इजाजत मिली तो प्रोफेसर कुर्सी छोड रितु के पास आए। रितु का हाथ पकडकर मुस्कुराते हुए बोले—आओ बेटा, वहीं चलकर बातें करेंगे, रितु उनके साथ अपनी जगह पर आकर बैठ गई। प्रोफेसर उसके सामने बैठ गए।

क्यों बेटी, पापा का शराब पीना अच्छा नहीं लगता ना?'

मम्मी को भी अच्छा नहीं लगता अकल। रितु धीरे से बोली।

बेटे मैंने तो उनके साथ शेयर नहीं किया!'

आप अच्छे हैं अंकल।'

अच्छे तो पापा भी हैं न? तुम्हें खूब प्यार करते हैं, है ना?

पर शराब अच्छी नहीं होती ना अंकल?'

हां, एक बात बता बेटे,—कमल कैसा होता है?'

बहुत अच्छा।

कहां पैदा होता है? प्रोफेसर के चेहरे पर मंद मुस्कान थिरक रही थी।

पता नहीं, अंकल, देवताओं की फोटो में देखा है।

बेटा कमल हमेशा कीचड़ में खिलता है, पर कितना पावन होता है? कीचड़ से सर्वथा अछूता ? तुम भी कमल की तरह हो। ये बुराइयां तुम्हारे भीतर नहीं होंगी बेटे। फिर तुम्हारे पापा तो अच्छे हैं इन्हें तो मेहमानों की खातिर पीना पड़ता है तुम्हें उदास नहीं होना चाहिए बेटा। मेरी बात समझ रही हो न?

हां, अंकल। रितु के चेहरे पर संतोष झलकने लगा।

तो फिर मुस्कुराओ, चलो हंसो?' प्रोफेसर ने रितु का हौसला बढ़ाया। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट थिरक उठी।

अच्छा बेटा, खुश रहना। मैं अब घर जाऊंगा। देरी हो रही है।

फिर कब आओगे अंकल?'

जल्दी ही जब तुम कहो। प्रोफेसर ने प्यार से रितु के सिर पर हाथ फिराकर बालों को सहलाया और दीपू की तरफ चले आए। रितु के चेहरे से उदासी के बादल छटने लगे थे। चेहरे पर शांति झलकने लगी थी।

क्या कहा? कुरड़ाराम ने उत्सुकता से पूछा। दीपू की सवालिया निगाहें भी प्रोफेसर के चेहरे पर टिकी थीं।

कुछ नहीं बस ऐसे ही मैंने उसे मंत्र दे दिया है।' प्रोफेसर सदाबहार मुस्कान के साथ बोले, 'अब इजाजत दीजिए, देर हो रही है, क्यों दीपू चलें?'

हां चलें। भई ठेकेदार जन्मदिन का हमें पता ही नहीं था, नहीं तो रितु के लिए कुछ उपहार ।'

उपहार किसे कहते हैं भाई दीपू ? अरे यार तुम नहीं जानते आज प्रोफेसर से मिलाकर तुमने मुझे क्या दिया है? कुरड़ाराम की नजरें रितु के चेहरे की तरफ उठ गईं जहां उदासी के चिह्न भी नहीं थे।

'प्रोफेसर आप यहीं रह जाइए हमारे पास , मै आपको जाने नहीं देना चाहता।'

'मै फिर आऊगा। फिलहाल तो शुभ रात्रि। कहते हुए प्रोफेसर दीपू के साथ हवेली से विदा हा गए। कुरडाराम दरवाजे पर खडा तब तक उन्हे देखता रहा जब तक उनकी पीठ नजर आई। उसके बाद भीतर आकर रितु को साथ लिए सोने के कमरे में जाकर लेट गया। लेटे-लेटे उसके कानों में रितु का मद्धिम-सा स्वर पडा— अकल, फिर कब आएगे ? उसने करवट लेकर देखा। रितु गहरी नींद मे थी। उसके होठों पर मद-मद मुस्कान थी और होठ कुछ कहने को थरथरा रहे थे। ●

अपना-अपना सुख

जिस दिन मैंने स्कूल म पहला कदम रखा था, उस दिन स हम दानों का साथ था। मैं और मरा चचेरा भाई मन्नू। मुझे उसके साथ की बहुत जरूरत थी। मैं दुबला-पतला और शात स्वभाव का था। मन्नू हट्टा-कट्टा और उग्र। हम दोनों कक्षा में पास-पास बैठते थे। सहपाठी उससे उलझने से डरते थे और उसके कारण मुझ स भी। मुझे जब काई छडता, तो वह उस पाट डालता था। लड़क मास्टरजी से उसकी शिकायत करने से डरते थे। मन्नू मेरी बात मानता था। कई सहपाठी उसकी मार से बचने के लिए मुझसे दोस्ती करते थे।

वह दोस्ती भी अजीब था। एक चॉक्लेट हा दास्ती के लिए काफी था। जब दोस्ती करनी होती तो अगूठे के पास वाली अगुली दूसरे के अगूठे के पास की अगुली से मिलानी होती थी। जरा सी नाराजगी पर अगूठा ठुड्डा से लगाकर हटाते ही कुट्टा हो जाती थी। वो लड़ाइया भी अजीब थीं। आज की लडाई कल तक फिर दोस्ती में बदल जाती थी।

तब कई बार स्कूल के बाहर दूध बाटा जाता था। बच्चा में खुसफुसाहट होती—'मरे हुए का दूध है।' मुझे अटपटा-सा लगता। भला दूध मर हुए का कैस हो सकता है मरने वाला आदमी इतना सारा दूध कैसे पीता था ? दूध हमारे घर पर भा था पर मा एक गिलास स अधिक मागन पर दूध की जगह डाट पिलाता थी। मुझे वह दूध अच्छा नहीं लगता था। मैं सोचता था कि यह दूध ये लाग हमे क्यों पिलाना चाहते हैं ? अपने बच्चों को क्यों नहीं पिला देते ? वह दूध मेरे मन में हलचल मचा देता। अनदेखा भय भीतर ही भातर मन की तरगों पर नाचन लगता था। पर मन्नू वह दूध पी लेता था। मैं घर आकर उसकी शिकायत नहीं करता। शायद मैं उसकी नाराजगा से डरता था। जब वह मुझसे कुट्टा कर लता ता पूरे स्कूल में मैं खुद का बहुत अकेला महसूस करता था।

हमारा साथ स्कूल में हा नहीं बाहर भी था। हमारे खेत भा पास पास थे और बाड़ा भा। स्कूल से छूटने के बाद हम खता क समय खतों में और बाड़ी के समय बाड़ी में साथ साथ ही जात थे। पढ़ने के लिए सुविधा स्थान और समय की

जरूरत है, ऐसा सोचने की फुर्सत तब हमें नहीं था। हमारी एक एक पुस्तक हमारे साथ होता और रखवाली करते भी जब तब उन्हें पढ़ने का समय हम निकाल लते थे। वह पढ़ना भी हमारा पढ़ने की ललक से कम और मास्टरजी की पिटाई के भय से अधिक होता था।

पिटाई की बात पर एक बात याद आई, स्कूल म एक दिन एक लड़के ने मन्नू का चुनौती दी। दोनों को सिर्फ मुक्कों के वार से एक-दूसरे को हराना था। चुनौता कड़ा था। स्कूल का हारा जनन का अघोषित मुकाबला था वह। दोपहर की छुट्टा का समय था। सारे लड़के मुकाबला देखने खड़े थे। दोनों के वार शुरू हो गए। मन्नू ने कई मुक्के उसे मार थे। पर बाद में वह पिटने लगा। सहपाठियों का शोर मर दाना में पिघले हुए शीशे-सा उतर रहा था। शायद मैं मन्नू का पिटते हुए नहीं देखना चाहता था। मेरे भीतर कहा से क्रोध भरने लगा। सहपाठी मुझे चिढ़ाने लगे थे— तेरा भाई पिट रहा है देख वह कैसे मार रहा है?' मैं उन दोनों के बीच जा खड़ा हुआ। दोनों को अलग कर न जाने किस ताव में मैं उसे चुनौता दे बैठा। सहपाठी आश्चर्य से मुझे देखने लगे। मन्नू ने भी मना किया। पर आज पहला बार मैं उसकी सुनने का तैयार न था। हम दोनों आमने-सामने थे। न जाने किस आवेश में ललकारता हुआ मै उस पर टूट पड़ा था। वह बुत बना अपने आपको बचाने के लिए पाछे हटता रहा। यहा तक की दीवार उसकी पीठ से सट गई। मेरे घूसे वहा भी उस पर घन की तरह बरस रह थे। स्कूल के सारे दर्शक छात्र शात थे। उन्हें जैसे साप सूघ गया हो। बेबस होकर उसने लात चला दी। फिर क्या था, मेरे पाव ने भी प्रहार कर दिया। ठीक उसकी टागों की सधि पर। इस प्रहार को वह झेल नहीं पाया। गिर कर अचेत हो गया। सहपाठियों में कोलाहल सा उभरा। किसी ने पानी लाकर छींटे मारे, किसी ने नाक बन्द किया, किसी ने कान खींचे किसी ने बालों को पकड़कर झिंझोड़ा। उसकी चेतना लौट आई। मैं भीतर से घबरा गया था। उसकी लौटती चेतना से मैं आश्वस्त हुआ।

मन्नू से जब भी मैं कुश्ती करता था, वह मुझे पटकना देता था। उस दिन पहला बार मुझे भ्रम हुआ कि मैं चाहे दुबला-पतला था, पर सबसे मजबूत था। मैं जीतना जानता था। पढ़ाई के मार्चे पर मैं मन्नू से हमेशा एक कदम आगे था। आज इस क्षेत्र में भी उसके एकाधिकार को मैंने तोड़ दिया था। हर व्यक्ति का अपना एक सुरक्षित कोना होता है, जहा वह अपने-आप से बात करते हुए गर्व का अनुभव कर सके। किसी दूसरे की उपस्थिति वहा नागवार होती है। मेरी इस जीत की प्रतिक्रिया मन्नू पर हुई थी। उसकी मानसिकता में मेरी यह जीत उसके उस सुरक्षित कोने में मेरी परछाई की तरह अनचाहे ही घुस आई थी। वह उसे निकालने में असमर्थ था। उसका अहम खंडित हो चुका था जिसकी पूर्ति के लिए वह फिर से नई बिसात बिछाने लगा था।

गर्मियों के मौसम में हमारा ठिकाना बाड़िया होता थीं। स्कूल का समय भी सुबह सात बजे से दोपहर बारह बजे तक होता था। स्कूल से छूटते ही हम बाड़ियों की रखवाली के लिए जाते थे। बाड़िया गांव बाहर श्मशान से आगे थीं। हम श्मशान तक पहुंचते पहुंचते प्यासे हो जाते थे। श्मशान की प्याऊ में पानी पी कर फिर बाड़िया की तरफ जाते थे। प्याऊ के पास से मन्नू की बाड़ी पूरी दिखाई देती थी। वह वहां काफी समय तक बैठा रहता। सूरज ढलने पर ही बाड़ी जाता था। मेरी बाड़ी का कुछ हिस्सा वहां से नजर नहीं आता था। मुझे उसके लिए जाना ही पड़ता।

प्याऊ में गजू चाचा थे। वे पिताजी और चाचाजी को भाईजी कहते थे। इसी नाते से हम उन्हें चाचा कहते थे। वहां उनका भतीजा पन्नू भी आया करता था। दुबला-पतला और फोड़े-फुंसियों से भरा हुआ। श्मशान के पास वाले जोहड़ में वह 'चटक सीताराम चटक सीताराम' की गुहार लगाता। एक हाथ से नाक बंद कर डुबकी मारता था। उस डुबकी के बाद वह मुंह पानी के ऊपर निकाल कर दोनों हाथ-पांव पानी में मारता कुछ दूर तक तैर कर बाहर आता। बाहर निकलने पर उसकी मरियल देह साफ होने के बजाय मुझे अधिक गंदी दिखाई देता। मटमैले पानी की परत उसके फोड़े फुंसियों से रिसते मवाद से एकाकार हुई-सी लगती।

वह जब नहाकर प्याऊ में आता था, मुझे और मन्नू को ऐसे देखता था मानो हमें कुछ भी नहीं आता। हम दोनों पानी में उतरने से घबराते थे। मैं उसकी इस कला का आदर करता था मगर उस गंदले पानी में नहाने का मन नहीं करता था। उसने मन्नू से कहा भी था कि मेरे साथ आओ तुम्हें तैरना सिखा दूं। पर मन्नू ने भी हिम्मत नहीं की।

गजू चाचा के सर के बाल उड़े हुए थे। उनका नाम क्या था यह हमें मालूम नहीं था। गंज की वजह से ही हम उन्हें गजू चाचा कहते थे। पर उनके सामने सिर्फ चाचा ही कहते थे। उनकी शादी नहीं हुई थी। वह कोई काम ढंग से नहीं कर सके थे, सिवाय पानी पिलाने के। और इस काम में भी उनकी कई बार बदली हुई थी। उनका स्वभाव ही अक्खड़ था। पर वह मुझ से और मन्नू से कई बार बड़े स्नेह से बातें करते थे। मैं तब इतना ही समझता था कि शायद पिताजी और चाचाजी बाड़ियों में सब्जी शुरू होने पर उन्हें मुफ्त में सब्जी दे दिया करते थे। उसकी वजह से ही वह हमसे स्नेह करते हैं। पर शायद यह एक कारण था। दूसरा कारण भी था उनका अकेलापन। जब कोई मुर्दा जलाने आता था कुछ देर के लिए उस प्याऊ में आवा-जाही होती। बाकी उस तरफ राहगीर इक्का दुक्का ही आता था।

गजू चाचा को चरभर का खेल आता था। बारह की नौ की और तीन की चरभर। मुझे बाड़ी के न दिखने वाले हिस्से के कारण बाड़ी में रहना पड़ता, पर

मन्नू के पास दोपहर में समय होता था। तपती रेत मे बला की जड़ खोदने की हिम्मत पक्षियों म भा नहीं था। ढोर-डगर क लिए मन्नू प्याऊ से बाहर निकलकर बाड़ा की तरफ देख लिया करता था और गजू चाचा के पास समय की कोई कमी नहीं थी। गजू चाचा ने अपने अकेलेपन को कुछ हद तक दूर करने के लिए मन्नू का सहारा ढूढ़ा और उसे चरभर में पारगत कर लिया। बारह और नौ की चरभर में भर बनन पर सामने वाले की गोटिया चर लीं जाता थीं। तीन की चरभर में भर नहीं बनता। दूसरे की गाटिया रद कर दा जाती थी। मुझे यह खेल नहीं आता था। मैंन सिर्फ उन्हें खेलते हुए देखा भर था।

मर साथ चरभर खेलेगा?' मन्नू ने मुझ स पूछा। मुझे नहां आती। मैंने मना कर दिया। आओ चाचा हम खलें। वे दोनो खेलते रहे। कई देर की मशक्कत के बाद मन्नू ने गजू चाचा को मात दे दी थी। मुझे मन्नू का कद एकाएक बढ़ता हुआ गजू चाचा से भा ऊपर जाता हुआ महसूस हुआ। मन्नू की विजयी मुस्कान मुझ मे अपना जीत का समर्थन चाह रही थी। मन्नू की हर जात पर न जाने क्यों मुझ अनजान-सी खुशी होता था। मुझे शायद उसकी जीत मे अपना जीत के दशन हाते थ।

हारना किसा को भी अच्छा नहीं लगता। गजू चाचा को भी नहीं लगता था। पर हारन क बाद वह खिसियाकर कहता था— चाहू तो मैं तुम्हें चुटकिया में हरा दू। पर अगर में हारू ही नहीं तो मेरे साथ कोई खेलेगा कब तक? तुम्हें भी मजा आना चाहिए न ? मैं तो तुम्हें सिखा रहा हू। उसकी इस बात पर मन्नू को ताव आ जाता और वह उस फिर खलन की चुनौती दता। दोनों की बाजिया इसी तरह चलता रहतीं। कई बार मन्नू जातता तो कई बार गजू चाचा जीत जाता। उनकी बाजियो का देखते-देखते मुझे भी खेलना आ गया था। पर मैं सीधा मन्नू स नहीं खलना चाहता था। एक दिन जब गजू चाचा ने मन्नू को मात दा तो मैंने खेलने की इच्छा जाहिर कर दी। मेरा वह पहली बाजी था और मै जानता था कि अगर मै हार गया तो मन्नू गजू चाचा को अपने साथ खेलने के लिए कहेगा। ठीक उसी तरह जिस तरह मैंने उस मुक्केबाज को ललकारा था। पर ऐसा हुआ नहीं। पहला बाजी में भी गजू मुझे हरा नहीं पाया। हरा मै भी उसे नहीं सका। दोनो की गोटिया ऐसी उलझीं कि भर बनने की कोई तरकीब काम नहीं कर पायी। मेरे को अधिक देर वहा ठहरना नहीं था। क्या पता न दिखने वाले हिस्से की बाड तोड कर कोई ढोर बाडा के भीतर घुस जाए । उस बाजी को यू ही छोड कर मै चल पडा। मन्नू ने हमारा उलझी बाजी की गोटिया चरभर स हटा लीं और गजू चाचा के साथ अपना बाजी लडाने लगा।

हमारा आँ[illegible] पास ही एक नहरा बगीचा लगाया गया था। हम [illegible] हमेशा आते [illegible] निहारा करते थे। बाद [illegible] पास लगा बकरा कभी [illegible] भी [illegible] पास [illegible] दिखाई नहीं पड़ता। शायद [illegible] था। पर मैं [illegible] बजाया जाता था। वह बांसुरी [illegible] बजाता था। उसकी मीठी आवाज तो सुन दूर से भी सुनाई पड़ती थी पर मैं शायद [illegible] बजाता जाता था। इसी कारण मैंने कई बार पानी भी पिलाया था और बाद में फल भी दिए थे। मैंने कई बार उसकी बांसुरी ले कर बजाना भी चाहा था पर सिवाय सांस की आवाज निकालने के अधिक कुछ कर नहीं पाया।

वह जितनी सुरीली बांसुरी बजाया करता था, उससे भी कहीं अधिक भद्दी गालियाँ भी निकालता था। बाड़ियों से कोई डेढ़ मील आगे बावरियों के डेरे थे। अक्सर वह उनके डेरों में सीटता हुआ गालियाँ बकता था। हमारा समय में वे लोग गए और भयानक थे। उनके पास बड़े-बड़े शिकारी कुत्ते थे जो आदमी को भी खा सकते थे। और वह लड़का उन्हें गालियाँ निकालता उनके डेरों से लौटता था। आते वक्त उनके साथ उनकी कोई न कोई बकरा होता। वह गालियाँ बकता ही चला करता था कि मेरे होते हुए कोई मेरा बकरा नहीं चुरा सकता। उसे देख कर मैं अक्सर सोचा करता था कि इतनी अच्छी बांसुरी बजाने वाला इतना लड़ाकू भी हो सकता है? मैं मन्नू के आगे भी उसकी प्रशंसा कर दिया करता था। सुनकर मन्नू कह देता— मैं भी उन डेरों में जाकर आ सकता हूँ। मैं कुछ नहीं बोलता था।

तभी एक दिन मन्नू प्याऊ में चरभर खेल रहा था और बाड़ी सूना था। उन बावरियों के दो लड़के बाड़ी से फल चुराकर ले गये थे। मन्नू जब बाड़ा पहुंचा तो उनके पावों के निशान और बेलों से तोड़े गये फलों को देखकर गुस्साता हुआ ठीक उस बकरियों वाले लड़के की तरह उन निशानों को देखता हुआ बावरियों के डेरे जा पहुंचा। फल तो वह वापस नहीं ला पाया था। वो लड़के शायद फलों को खा चुके थे। पर मन्नू ने उनके घरवालों को खरी-खोटी सुनाई थी। तब मुझे उसकी बात पर यकीन नहीं हुआ था। पर जब उसने घर आकर चाचाजी से वही बातें दोहराईं तो मुझे मानना पड़ा। चाचाजी ने उसे प्रसंशात्मक निगाहों से निहारते हुए थपथपाया था। मुझे एकाएक विचार आया कि अगर मैं मन्नू के प्याऊ में चरभर खेलने और बाड़ी के सूनेपन के कारण हुई चोरी की मन्नू की लापरवाही बता दूं तो ? पर मैं मन्नू के उस सुख को छीनना नहीं चाहता था। शायद इसीलिए मेरे मुंह से शब्द नहीं फूटे।

शायद मन्नू और मेरे बीच कुछ अनुपात ठीक नहीं रह पाया। तभी मैंने एक दिन उससे चरभर खेलने के लिए हामी भर दी। हर आदमी अपनी अपनी चरभर खेलता है। अपनी अपनी गोटियाँ चलता है। जब किसी की गोटी पिट जाती है तो

वह फिर नई गोटी की तलाश करता है या नये सिरे से चरभर सजाता है। कई बार मुझे ऐसा लगता है मानो पूरा संसार ही एक चरभर की बिसात है और हर आदमी उसकी गोटी। कब कौन-सी गोटी पिट जाए किसे पता। हम दोनों की यह बाजी भी खत्म नहीं हुई। दोनों की गोटियाँ उलझकर रह गईं। झुंझलाहट में मन्नू ने सारी गोटियाँ चरभर से हटा लीं और मुझे फिर से खेलने को कहा। पर अब मैं तैयार नहीं था। मुझे अजीब सा सुकून मिला। शायद मन्नू की बराबरी से मैं अधिक संतुष्ट था। पर मन्नू अपनी जीत चाहता था। मैं उठ कर बाडी की तरफ रवाना हो गया। मुझे चलते-चलते ही एक ख्याल आया कि हर आदमी अपना चरभर सजा रहा है, चाहे वह नौ की हो, बारह की हो या तीन की। चाहे गजू हो, पन्नू हो मुक्केवाला वह लडका हो या बकरियों वाला या मन्नू सभी अपनी गोटियाँ खेल रहे हैं। पर शायद मेरा अपनी कोई चरभर नहीं है तीन की भी नहीं। ●

किरचे

खाना खाने के बाद मैं चारपाई पर अधलेटा-सा पसरा पड़ा था। स्टोव पर चाय के लिए पानी उबलने को रखा हुआ था। अक्सर ऐसा ही होता है कि पानी उबलते-उबलते सयोग आ जाता है। फिर चाय बना कर कपों में छानने और पीने की सारी प्रक्रिया एक बधे बधाय कार्यक्रम की तरह निबट जाता है, चाय हमारी मुलाकात की भूमिका होता है। बातचीत से मुलाकात परवान चढ़ती है और समय की मजबूरी अत का सबब बनता है। अत ' सभी का तय है। जो है, उसका भी और जो होगा उसका भी। पर है और होगा के बीच में बहुत कुछ होता है, शायद अनन्त ।

चाय का पानी उबलकर खत्म होने को था। पर उढ़के हुए दरवाजे को धकेलकर सयोग नहीं आया। मजबूरन मैंने उठकर स्टोव बन्द कर दिया। मजबूरी आदमी से जाने क्या-क्या करवा देता है। मैंने तो स्टोव ही बद किया था। सयोग का क्या पता क्या बद हुआ है जो अभी तक नहीं आया ? मैंने दरवाजे के उढ़के किंवाड़ को खोल कर गली के नुक्कड तक नजरें दौड़ाई। गली के पोल पर लटकते नगरपालिका के साठ वॉट के बल्व की मटमैली रोशनी में मरियल वृत्त की आकृति के सिवा कुछ नजर नहीं आया। मैं किवाड़ को वापस उढ़का कर चारपाई पर आ लेटा।

मैं यहा का नहीं था। यहा मुझे नौकरी के लिए आना पडा था। बीच शहर में कोई कमरा तक किराये पर नहीं मिला। मिलने को तो मिल भी जाता पर वह किराया मेरी हदों के बाहर था। यह जगह नई बस्ती की थी। यह कमरा बैठक । घरवालों ने किराये पर दे दिया मगर बनाया हुआ आगन्तुकों के लिए ही था। इस कमरे को किराये लेते ही मेरे मन में शहर की परेशानी ने सरगोशी की— गाव में कोई अपना बैठक किराये पर नहीं देता मकान मालिक ने दी है, तो निश्चय ही आर्थिक तगी की वजह से शहर में जाने के लिए आदमी बहुत कुछ किराये पर दे देता है ।'

इस मौहल्ले के भूगोल को मैं आज तक नहीं समझ पाया। हालांकि मुझे यहां रहते पूरे पांच साल हो चुके थे, पर मानो मेरे लिए इस मौहल्ले के लोग अजनबी हों। जहां गांव है, वहां गांव ही मौहल्ला होता है। पूरे गांव की एक पहचान होती है, जैसे मौहल्ले की। लोगों के चरित्र उदाहरण दिये जा सकने वाले एकदम साफ आईने की मानिंद। कस्बों और छोटे शहरों में पहचान चटके हुए शीशे की तरहदार जैसा होता है। अलग-अलग रहकर भी एक होने का भ्रम पाले हुए। हर मौहल्ले का अपना अलग अक्स होता है, पर एक ही फ्रेम में जड़ा होने से टूटा फूटी शक्ल के बावजूद वजूद नहीं खोता। बड़े शहरों में यह पहचान भी नहीं होती। मौहल्ले होते हैं उनके शरीर भी होते हैं, पर चेहरे नहीं होते। जैसे आईने के असंख्य टुकड़े होने के बाद किसी आकृति का अपना अस्तित्व न रहकर सब गड्ड मड्ड हो जाता है।

अगर यह कोई महानगर होता, तो शायद मुझे अपनी समझ का इतना रंज न रहता। मगर यह छोटा शहर था। यह भी कस्बे से शहर की शक्ल औढ़ा हुआ। इसमें अभी तक मौहल्लों की शक्लें थीं। तिड़के हुए आईने की भांति टेढ़ी-मेढ़ा। पर पहचान थी और मैं था कि पांच वर्ष बाद भी यहां के बाशिंदों की कोई छवि पहचान पाने से कोसों दूर था। लाख माथा-पच्ची पर भी नतीजा वही ढाक के तीन पात। हां, इस चक्कर में कभी-कभार किसी कांच की नुकीली किरच कलेजे में चुभकर टीसें अवश्य दे जाती थी, जिसे निकालने में संयोग भी अपने हाथ घायल कर लिया करता था।

पहले पहल जब संयोग आया था, पूरे मौहल्ले की एक साधारण-सी तस्वीर से मेरा परिचय करवाया था। जैसे शीशे में प्रतिबिम्ब झलकता है मेरी आंखों की पुतलियों में संयोग भी अपनी बात की प्रतिछाया देख सकता था। मौहल्ले के एक-एक किरदार ने मेरे मानस पटल पर अपनी स्मृति के चिह्न अंकित कर लिए थे। पर वह जानकारी कितनी अधूरी थी ?

शिवा ! संयोग के साथ जब पहली बार उसे देखा था, पहली नजर में ही उसका अजीब-सा व्यक्तित्व गवाही दे रहा था कि मेरी नजरें कई वर्षों बाद भी उसे एक नजर देखकर पहचान लेगी। साठ-पचपन के बीच की उम्र। पिचका हुआ लम्बोतरा चेहरा। धसी हुई आंखों में गाढ़ा छितरा हुआ सुरमा। सफाचट दाढ़ी मूंछें। खिचड़ी बाल और हड्डियों के ढांचे को अपने में छुपाए हुए मैल-पटे धोती-कमीज। सत्संग मंडली के बीचों-बीच खड़ा वह नाच रहा था। ढोलक की ताल पर उसके हाथों के लटके-झटके के साथ कभी कभार कूल्हे भी मटक रहे थे। यह बात और थी कि कूल्हे नाम मात्र ही थे। कबीर की एक वाणी के बोल थे—

ड्योढी तक तिरिया का नाता, फलसै तक तेरी माता रे

मगर ता तरा ग्म्म बजाना, हम अकेला जाता र

गार गगर तर गान मा मरा जग माय जिणा थाड़ा र

'रहत रचार गुणा भाई गाथा' के साथ जैस ही ढोलक की थाप ने ठमका खाया शिवा अपना उगढ़ता गागों को महेजने बैठ गया। मुझे अचानक सवाल आया— अभी अगर यह भी मर गया तो ! श्रोता दर्शकों में कोई शौकिया नहीं था। येग भी गर हुए के घर बारह दिनों में परिवार और कुटुम्ब के लोगों के अलावा लोग आते नहीं हैं। फिर शिवा भी तो पूरा तल्लीनता से नाचा था किसी प्रकार का फिकरा नहीं उछला। सत्सग भी इस तरह के होते हैं। जब किसी जागरण में गवैया 'गारा गारा राधा मरा, काला तेरा कृष्णा' कहकर राग अलापता है मनचले श्रोताओं की नजर उसकी परवाह किए बिना बार-बार मुखड़ा तलाशने लगती है, मगर इस शोकाकुल माहौल में ऐसा वाणिया ही चित शात करता हैं। कुछ समय के लिए मानो व्यक्ति सभी रिश्तों से ऊपर उठकर अपने-आप में ही लीन हो जाता है। दूसरों के लिए अस्तित्वहीन-सा। उस रात मुझे बड़ी गहरी नींद आई था। मैं जैसे निपट अकेला, चितामुक्त था।

शिवा की जीवट देख मैं उसके बारे में और जानने को उत्सुक था। दूसरे दिन सयोग के आते ही मैंने पहला सवाल यही दागा— शिवा कौन है ?

महावीर का बाप।'

महावीर का बाप और इतना दुर्बल ? इसे पहले तो कभी नहीं देखा ?

सयोग फिस्स से हस दिया। फिर पलटकर मुझसे पूछा— कभी लोकल बस-स्टेण्ड नहीं गए क्या ?

क्यों ? मे हैरान था।

अरे भाई सुबह से शाम तक वहा इसी की आवाज गूजती है। सयोग इतना बोलकर चुप हो गया। मुझे झुझलाहट हुई। यह भी कोई परिचय होता है भला ? किसी सलवटी आईने के सामने खडे होने पर जैसे शक्ल बिगड जाती है चेहरे का एक हिस्सा अपनी स्वाभाविकता खो कर बढ़ा-चढ़ा दिखता है। मुझे लगा कि सयोग मुझसे कुछ छुपाने के लिए लोकल बस-स्टेण्ड पर ही छोडना चाहता है। खुली किताब के पन्ने भी अपने मजमून को छुपा लें, कभी यह भी हुआ है ? सयोग ने मुझसे पर्दा किया ही कब है, जो आज करता ? शायद मेरी उत्सुकता ही थी जो एक सास में ही सब कुछ सुन लेना चाहता था।

शिवा की औरत के महावीर के बाद और औलाद पैदा नहीं हुई। साथियों ने शिवा को छेडना शुरू कर दिया। शिवा पलटकर कुछ कहता नहीं था। छेड़ने वाले

चुहल का आनन्द लेते रहते और वह निरीह-सा उन्हें अपने पर हसते हुए देखता रहता। एक दिन अचानक उसका मुह खुला—

'शेरनी के एक ही पैदा होता है, महावीर की मा शेरनी है, सूअरी नहीं।' साथियों को जैसे साप सूघ गया। आज यह उलटी गगा कैसे आश्चर्य मे वे एक-दूजे का मुह ताकने लगे। शिवा की गाढ़े सुरमे से घिरी आखे चमकने लगीं। इतना वजनी बात उसने कही थी कि उसके बोझ तले सभी की जबान दब गई। उसने सीना फुलाकर एक नजर साथियों पर डाली।

भाभी ने बताया क्या ?' नन्दू की आवाज से मडली में फिर हरकत का सचार हुआ। एक मिलाजुला ठहाका शिवा के कानों से टकराया और उसकी चमकती आखें बुझ गईं। खिसियाहट भरी हसी ने उसके चेहरे को बिगाड दिया। शायद भीतर कुछ टूट रहा था, पता नहीं क्या कि उसका चेहरा निस्तेज हो गया।

शिवा की औरत को मरे पाच-सात साल हो गए। उसका नाता मित्रों से टूट-सा गया था। सुबह से शाम तक बस रवाना करवाता वह लोकल बस-स्टैण्ड का ही हो गया था। सिर्फ रात गुजारने को घर आता था। साथियों की सजीदा मजाकों से जूझने का उसका अतिम हथियार मानो उसकी औरत के साथ ही भस्म हो गया था।

एक दिन शिवा अचानक शाम को सयोग के पास आया। सयोग को अकेले मे बुलाकर बोला—'तू लिछमी को तो जानता ही होगा वही जो नत्थू के मकान में रहती है ? सुना है उसके आगे-पीछे कोई नहीं है। मायके से निकलकर सुकून से रहने यहा आई था। आज से पहले आते-जाते मैंने उसे नत्थू के आगन मे देखा भर था। उसने भी मुझे वहा देखा हो शायद पर कभी बातचीत नहीं की। आज सुबह मैं बस-स्टेण्ड जाने को था कि उसने मुझे आवाज दे दी। मै रुक गया। हमारे घरों को विभाजित करने वाली दीवार के उस पार से उसने मुझे पुकारा था। पास जाने पर वह मुझसे कहने लगी—'रात को दुर्गा आया था। यहीं आगन में। अब मैं कोई उसकी बहिन तो लगती नहीं था ?' मैं उसका मुह ताकता रह गया। उसकी अजीब सी निगाहें मेरे चेहरे को टटोल रही थीं। मेरी समझ में कुछ नहीं आया। मैं उससे क्या कहू सारे दिन सोचता रहा अब भी समझ नहीं आता उसने यह सब मुझे क्यों बताया ?' सयोग शिवा को ताकता रह गया। फिर धीरे से पूछा— वह दीवार कैसी है जिसके पास लिछमी से तुम्हारी बात हुई थी ?'

कच्ची ईंटों की। महावीर की मा थी, तब हर साल गोबर से लीपना-पोतता था। अब तो उसकी हालत काफी जर्जर है। पानी की मार से जगह-जगह लेव उतरकर मिट्टी बह चली है।

[illegible] मस्ती [illegible] धार म [illegible]। अगर तुम उस [illegible] फिर [illegible] मिट्टी [illegible] में [illegible]। शिवा [illegible] सुनता रहा।

उस [illegible] दुर्गा [illegible] उभरा। मैं [illegible] गया। सयोग [illegible] रहा। [illegible] दिन उसके [illegible] अलग [illegible] था। [illegible] सयोग को [illegible] दिन निकल जाए फिर [illegible], पर [illegible] ?' सयोग ने [illegible] कोशिश कर ली पर उन्हें [illegible] में [illegible] रहा था।

पांचों रोज सयोग ने मुझे बताया कि लिछमी ने दोनों को एक कर लिया। सुना है अपनी सपत्ति को दे उन्हीं में बांटने को कहकर उन्हें एक कर पाई है। बाप के पास [illegible] करने में ही तो उन्हें कठिनाई था। लिछमी की सपत्ति आते [illegible] एक हो गए।

शिवा [illegible] मेरे मुह से अचानक निकला। सयोग मुझे अटपटी नजरों से देखने लगा।

तुम्हें और कुछ तो सूझता नहीं क्यों किसी की कतरनें करते रहते हो? हो सकता है, वह धन लिछमी को दुर्गा ने ही दिया हो [illegible]? शिवा इसमें कहा आता है? मैं चुप रह गया। उस दिन फिर और बात नहीं हुई। सयोग को खर्च की व्यवस्था में हाथ बटाना था। वह चला गया।

ग्यारह की रात सत्सग में मैं मुह दिखाने की गरज से गया था। औरतों की तरफ लिछमी बैठी थी उसे देख कर नहीं लगता था कि वह दुर्गा के मरने पर व्याकुल हो। शिवा आज इतना नाचा था कि लोगों को उसे उठाकर लिटाना पड़ा। उसकी सासें सत्सग खत्म होने तक भी सयत नहीं हो पायी थीं।

सयोग अभी तक नहीं आया। मैं चारपाई से उठा और उढ़के हुए दरवाजे को बन्द करने ही वाला था कि बाहर से दरवाजे पर थाप लगी। सयोग ही था। मैं दरवाजा खुला छोड़ चाय बनाने के लिए स्टोव की तरफ बढ़ा तो उसने मना कर दिया। ऐसा पहला बार हुआ था कि सयोग ने चाय के लिए मना किया हो।

कहा अटक गए थे। बड़ी देर कर दी?

लिछमी चली गई। सारा धन महावीर को देकर। शिवा का भी सुबह से पता नहीं है। बस स्टेण्ड भी सूना है। कहकर सयोग चारपाई पर निढाल सा बैठ गया। लग रहा था कि उसने बहुत कुछ किया है। मुझे लगा जैसे एक साथ कई किरचें मेरे और सयोग के भीतर धस गई हैं। ●

बोल ढोलकी बोल

सुरजिय ने निगाह भर छुटकी को निहारा। उदासी की चादर ने उसके चेहरे को ढक लिया। पलकों में व्यथा का सागर ठाठें मारने लगा। अभी परसों ही तो उसने यहा डेरा डाला था, रास्ते में ही छुटकी की तबीयत बिगड़ गई। गाठ के पैसे तो किराए-भाड़े म ही चुक गए थे। बचा यह दो दिन का आटा, जो उसकी भूख तो मिटा सकता है, पर खाया किससे जाये? छोरी की तरफ निगाह उठते ही सुरजिये की भूख-प्यास, सब न जाने पेट के किस कोने में मुह दबाकर दुबक जाती है। पेट के अन्दर आवेगा की भट्टी-सा जलता है। वह महसूसता कि शायद उसकी एक-एक नस-नाड़ी जलकर राख बन रही है।

बा पू! छुटकी मुंदी पलकों में अचेतन ही बुड़बुड़ाई। सुरजिय का निराश थका हुआ हाथ उसके माथे को सहलाने लगा। इससे अधिक वह कर भी क्या सकता था? डाक्टर तक ले भी जाए तो दवा के पैसे ? सोनकी भी अकेली क्या करे । छोरी है कि घडी भर दूर होते ही बापू-बापू की रट लगा देती है, पर ए कब तक चलेगा / इलाज कराए बिना छोरी सुधरती लगी नहीं । सुरजिये का हाथ छुटकी के माथे पर फिर रहा था और विचारों के रेले न जाने कहा-किधर बह रहे थे।

डेरे के कोने में बैठा सोनकी से रहा नहीं गया। उसने ढोलकी उठाई और तम्बू से बाहर निकल आई। सुरजिए का विचार-प्रवाह रुक गया।

किधर को जा रही है ढोलकी लई के ?

फेरी दे आऊ ? कुछ तो मिलेगा।'

तुझे कौन देगा ? करतब तो तेरे को आता नहीं फिर ढोलकी भी कौन बजानी आती है ?'

'तो यहा बैठे कौन तीर मार लेंगे ? छोरी का कुछ बन्दोबस्त नहीं करना क्या ?

'तू इधर आ, छोरी के पास। मैं जाता हू!

छुटकी ना जिक्र आते ही सुरजिये की ममता आहत हो उठी। ठीक ही तो है , यहा बैठे वाला हाथ परन म तो छुटकी सुधरी सी रहा । एक न फरा में ना व पैसे तो जुगाड़ ही लगा । सुरजिय न सोनकी को छुटकी के पास बिठाया और ढोलकी को गले से लटकाकर गाव की ओर बढ चला।

❒

सुरजिये का परिवार कभी एक जगह का होकर नही रह सका। रहता भी कैसे ? एक जगह कितने दिन तमाशे चलते हैं ? चाचा, ताऊ और सुरजिये समेत तीन कुनबे साथ-साथ चले हैं। तीनो का रोजगार मजमे के अलावा कुछ नहीं था। चाचा जादूगिरी के करतब दिखलाता— डुग-डुग डुर्रन-डुर्रन डुग डुग के साथ बासुरी क सुर पूरे मजमे और मैदान का निरीक्षण कर दर्शकों को तौलती निगाह और जमूर 5-5 दिखला तेरा कमाल क्या ? नोटो की गड्डी मगवाऊ ? अ मशान की खोपड़ी ठहर जाओ हिलना मत जमूरा मर जाएगा बच्चा है तड़प रहा है मशान की खोपडी ने इसको पकड रखा है ऐ-5-5 कौन हिला रे मेरे बा 5प ? कोई अपना जगह से हिलना मत-ऐ पाव मत हिलाना ? मुट्ठी किसकी बधी है मेरे बाप ? कोई अपनी जगह मे हिला तो सारा खून उसके कपडों पर जाएगा पाच-दस कदम चल चक्कर खाकर गिरेगा । ऐ-5-5 कौन हिला रे-5 ? मशान की खोपडी पकड उसे ? ऐ बाबा ? जिला दू बच्चे को ? सभी अपनी अपनी जेबो से पैसे निकालकर जमूरे पर डाल दें जल्दी।

सुरजिये के मन मे यह खेल नहीं था ठगी थी। लोगो को भयभीत कर पैसे ऐठना भी कोई मनोरजन हुआ है भला ? सुरजिये को यह तमाशा अच्छा नहीं लगता। इससे तो ताऊजी ही ठीक। साप और नेवले की लडाई दिखाते भी कभी साप को मरने नहीं देते। डुगडुगी बजाते कटोरा हाथ में थाम, साप को दूध पिलाने और अपने पेट की आग बुझाने को लोगो से पैसे देने की गुजारिश करते दो चक्कर मजमे के लगाकर सतोष कर लेते हैं। जो दे उसका भला और जो न दे उसका भी भला।

सुरजिये का खेल जोखिम भरा है। सोनकी ढोलक पर थाप देती है— धिगड़-धिगड धिगड । और सुरजिया बीसफुटे बास के सिरे पर छुटकी को टिका कर बास को हाथों और पेट के सहारे टिकाकर पूरे मजमे का अभिवादन करता चक्कर मारता है एक दो तीन । सोनकी ढोलक पर हाथ मारती है— धिगड़ धिगड़-धिगड आस बास पर टगी छुटकी के साथ घूमता है। सुरजिये का पेट सास लेना भूल जाता है। उसकी सारी चेतना बास पर टग जाती है। पूरा

मज्मा कौतूहल से कभी बास पर टगी छुटकी तो कभी सुरजिए को अपलक देखता है।

सोनकी खुली आखों से सपना देखती है, 'धिगड़-धिगड़-धिगड़ यह ढोलक की आवाज है, या उसकी पसलियों से टकराकर दिल धड़क-धड़क-धड़क बज रहा है ? बास पर टगी छुटकी तक मानो दिल की निरतर हो रही धड़कन एक-दूसरा का पीछा करती सोनकी तक अटूट पुल का निर्माण कर रहा था।

जय, बमभोले !' सुरजिया पूरे वेग से बास को दोनो हाथों से ऊपर उछालकर छोड देता है। छुटकी आख मूदे आसमान में गोता-सा लगाती है। दम हलक में फस जाता है। सोनकी एक पल को विस्मृत-सी रह जाता है, उसके दोनों हाथ ढोलक से चिपक जाते हैं। पूरा मजमा दम साधे रह जाता है। पर सुरजिय में इसी समय बिजली-सी समा जाती है। दोनों हाथ छुटकी को आसमान में लपकने का आतुर फैल जाते हैं। सुरजिया सधे हाथों हवा में ही छुटकी को थाम लेता है। तड-तड-तड़ड-ऽ-ऽ वा-वाह-वाह !' दाद और वाह-वाह के साथ तालियां की गड़गड़ाहट का समा बध जाता है। छुटकी सुरजिये के कधे से चिपक जाता है। सुरजिये की पलकों पर खुशी और प्यार की नमी तैरने लगती है।

खेल का एक भाग खत्म हो जाता है। छुटकी सारे मजमे का चक्कर लगाती, अपने नन्हे-नन्हे हाथ जोडती दर्शकों का आभार जताती है।

❏

सुरजिया गाव की गलियों म दाखिल हो गया। ये गाव उसके लिए अपरोगे नहीं हैं। पहले बापू के साथ उसने कई बार इस गाव में भी करतब किए हैं। छुटकी भी एक बार अपना खेल यहा दिखला चुकी है। छुटकी का खयाल आते ही सुरजिए के पावों में पख लग गए। जितना जल्दी हो सके, छुटकी की दवा-दारू के पैसे उसे बनाने हैं। उसके कदमों का रुख स्वत ही पुराने मजमे वाली ठौर की ओर हो गया।

सुरजिय के कदम ठिठक गए। वहा अब मैदान की जगह खूबसूरत मकान खडा था। एक पल रुककर उसने सोचा— अकेले कौन-सा मजमा जमेगा कितने क लोग जमा होंगे ? और करतब भी अकेला क्या करेगा ढोलकी ही तो बजानी है ! सुरजिये ने एक नजर मकान के बद फाटक पर डाला और फिर ढोलकी पर थाप देने लगा। पर इस घर से कोई बाहर नहीं झाका। चोहना ऐसी देख निराश-सा वह आगे बढ़ चला।

घूमते-घूमते सुरजिये का दिल डूबने लगा। कई गलियों में उसने ढोलकी पर हाथ छोड़े थे, कंठ भी खोले मगर घरों के दरवाजे तो क्या खिड़की भी नहीं खुली। बड़े-बूढ़े तो अलग रहे, बच्चे भी नजर नहीं आए। पूरा गाव जैसे छुटकी से होड लगा कर निष्प्राणवत् ऊंघ रहा हो। थक-हारे सुरजिये ने बाजार की ओर रुख किया।

बाजार में भी आज सुनेड़ थी। रविवार की छुट्टी का इतना असर इस जैसे कस्बे में नहीं होता। कहीं कुछ अनहोना घटा है ! सुरजिया सोच में भर गया। उसे सारी दुनिया ही छुटकी की बैरी लगी।

दो तीन दूकानों के आगे मजमे-सा भीड़ देख सुरजिये ने सोचा—'राशन की दूकानें होंगी !' इस विचार-मात्र ने सुरजिये की दम तोड़ती आशा में सजीवनी की रगत भर दी। क्षणांश में ही उसके हाथ ढोलकी पर नाचने लगे। गले ने किसी भूले-बिसरे गीत के बोलों को सस्वर धकेला। भीड़ टस से मस न हुई। लोग उचक-उचककर दूकानों के भीतर झाक रहे थे। सुरजिये को अचभा हुआ। क्या लोगों की रुचि मर गई ? गीत-सगीत से मोह नहीं रहा ? या ढोलक में ही कोई खोट आ गया है ? सुरजिये ने हाथ रोककर ढोलक की परख की। डोरिया कसी हुई थी। मुह तने हुए। ढोलकी तो ढोलकी ही है ? फिर ! सुरजिये का कौतूहल बढ़ गया। कुछ देर के लिए वह छुटकी से दूर इस भीड़ में शामिल हो गया।

दूकान के अन्दर टी वी चल रहा था। अरे ! यह तो छुटकी बास पर टगी है ? और यह ? सोनकी ? सुरजिया उचककर ध्यान से देखने लगा। दृश्य बदल गया। छुटकी के दोनों हाथ एक लकड़ी पकड़े फैले है। धीरे-धीरे उसके पाव रस्सा पर आगे बढ़ रहे है। सुरजिया ढोलकी बजाता जमीं पर उछल-उछल कर छुटकी का हौसला बढ़ा रहा है। सोनकी कटोरा लिए मजमे का चक्कर लगा रहा है। कटोरा पैसों से भर रहा है। तालियों की गड़गड़ाहट गूज रही है। और खेल खत्म। दूकान पर लगे मजमे से नाद और वाह वाही उछलने लगी। वाह, कमाल है भई ! अजी साहब मौत से खेलते हैं ! भई इसी का नाम तो करतब है !

सुरजिये की छाती अपनी तारीफ सुन गज भर की हो गई। हिये में हिलोरें मचलने लगी और उसका मन भिगोने लगीं। दूकान से थोड़ा अलग हट कर सुरजिये ने अपने उन्मुक्त हाथ ढोलकी पर छोड़ दिए। धिगड़ धिगड़-धिगड़ !'

दूकान का मजमा धीरे-धीरे हट गया। सुरजिये पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। वह आखें मूदे ढोलकी पर हाथ मारता रहा। धिगड़-धिगड़ धिगड़ ! ढोलकी पर उसके हाथों की गति निरतर बढ़ती जा रही थी। साथ-साथ सुरजिया

भी आखें मूदे झूमने लगा। ढोलकी की आवाज बदलने लगी धिगड-धिगड, धड्द धड्द तड्ड्ड तड !

एकाएक सन्नाटा-सा छा गया। ढप्प ! एक भद्दा आवाज के साथ ढोलकी चुप हो गई। सुरजिये की आख खुल गई। उसका दाहिना हाथ ढोलकी के कलेजे से जा लगा था। सुरजिये न इधर-उधर नजरे दौडाई। ढोलकी और सुरजिये क सिवाय उनकी दशा पर हसन-रोने वाला काइ वहा नहीं था। सुरजिये ने अचानक बाए हाथ का भरपूर मुक्का ढोलकी के दूसरे मुह पर मारा। ढोलकी आर-पार खिन लगी। सुरजिये ने फिर आखे मूद लीं। ●

पलायन

टाकू ने ललाट पर लुढ़क्त स्वदकणा को पौछा तो अगोछा गाला हो गया। उसने अगाछे को फैलाकर दाहरा किया और माथे पर डाल लिया। धूप अपन यौवन पर था। कोलतार की अजगर-सी पसरी सडक लावा उगल रही था। टीकू चलते चलत थककर चूर हो गया। दुबली-पतली अशक्त काया और उम्र का आखिरा पड़ाव, तिस पर यह जानलेवा गर्मी टीकू को किसी ठड आश्रय-स्थल पर रुकने के लिए बाध्य कर रही था। वह बेबस हो इधर-उधर नजर फिराने लगा। सामने नगर परिषद् का पार्क दिखाई पडा। वह उसी की आर चल पड़ा।

टीकू आज रुकने के लिए नहीं चला था। रुकना टीकू की फितरत म नहीं था। ठहराव चाहे कैसा भी हा टीकू के हिसाब से अत है। ठहरा हुआ पानी कितने दिन स्वच्छ रहता है ? पडे-पड़े तो लोहे को भा जग खा जाता है , फिर मनुष्य का शरीर कैसे सुरक्षित रह सकता है ? वह तो कर्मयोगी था कर्म का उपासक। टाकू ने अपनी समझ पकड़ने के बाद जीवन में ठहराव आने ही नहीं दिया और जब जब ठहराव आ ही गया तो टाकू कितना बर्दाश्त करता भला ? मौका मिलते ही वह सारे बधन तोड कर गतिमान हा गया। पर, इस बुढ़ापे का क्या करे ? जवानी की तरह यह भागता थाड़े ही है ? विचार अवश्य भागते हैं। पर कदम तो शरीर की शक्ति भर ही साथ देते हैं।

पार्क में हरी-हरी दूब चारों तरफ पसरा हुई था। पानी के फव्वारे चल रहे थे। छोटे बड़े पेड पौधे भी थे, जिनके नीचे कई प्राणा सुस्ता रहे थे। टाकू भा एक पेड के नीचे दूब पर लेट गया। थके-बूढ़े शरीर को शीतल छाया ने थोडी देर में ही नींद के आगोश में धकेल दिया।

आज से दो साल पहले तक टाकू अपने गाव में था। गाव के चिपते ही बाबा भानानाथ की कुटिया था। कुटिया के आगे बगाची और बगाचा में नाम सरस, सजड़ा टाला के छायादार पेड। पेड़ों की डाल से लटकते छींके और छींकों के अन्दर फूट हुए घडा मटकों के पैंदे, जिनमें आठों प्रहर पानी भरा रहता। पास हा

चबूतरा था जिस पर जौ-ज्वार, बाजरी-गहू के दाने परेवड़ा के चुगे हेतु बिखरे होते। ऐसे तपते मौसम में टीकू बगीची में ही सुकून पाता था। सुबह-शाम बाबा अपनी साधना में लीन रहते थे पर दोपहर में बगीची आने वाले लोगों से बतियाया करते थे। टीकू पहले-पहल जब बगीची गया था, बाबा की मण्डली-जमी हुई थी। मण्डली में चिलम चल रही थी। घूमते-घूमते चिलम टीकू के पास पहुंची तो उसने झिझकते हुए उसे थाम लिया। चिलम थामने के साथ ही टीकू की निगाहें बाबा की तरफ उठीं। बाबा उसी की ओर देख रहे थे। नजरें मिलते ही बाबा ने पूछा—
'गृहस्थी हो बच्चा ?'

'हां, बाबा।'

'पक्की चिलम पाते हो ?'

'पहले तो कभी नहीं पी।'

'तो चिलम आगे बढ़ा दो भविष्य में कभी हाथ में मत लेना।'

'आप भी तो पीते हैं, बाबा ?'

'हम साधु हैं, गृहस्थी त्याग चुके हैं।'

'चिलम पीने न पाने का गृहस्थी से क्या सम्बन्ध है?'

'गृहस्थी में कर्तव्य होता है बच्चा चिलम में नशा । नशा आदमी को कर्तव्य-पथ से डिगाता है।'

'फिर आप क्यों पीते हैं, आपका कोई कर्तव्य नहीं रहा क्या ?'

'बच्चा काम-वासना, आशा-तृष्णा, मोह माया किसी प्राणी की मिटती नहीं है। एकाग्रचित होने के लिए इन्हें भुलाना पड़ता है। भुलाने के लिए नशा एक साधन है। बस, इसीलिए पीते हैं कि सब कुछ भूल कर ब्रह्म में लीन हो सकें।'

'तब तो बाबा आप यथार्थ से भागकर कल्पना लोक में उड़ते हैं। जीवन से डरकर भागना तो कायरता है। क्षमा करें बाबा आप भगोड़े हैं योगी नहीं।'

टीकू के इन शब्दों का बाबा पर क्या असर हुआ, वह नहीं जान पाया। पर, मण्डली के लोग उसे अप्रिय दृष्टि से देखने लगे। बाबा के मुख पर शान्त स्मित हास्य उभरा और बाबा ने टीकू की तरफ अभिवादन में हाथ जोड़ दिए। फिर मण्डली से मुखातिब हो, बोले— 'टीकू ज्ञानी है बच्चा, मैं ध्यानयोगी हूं यह कर्मयोगी है। कर्मयोग ध्यानयोग से श्रेष्ठ होता है बच्चा । तुम टीकू की बात पर गुस्सा मत करो। यह सच्चा कर्मयोगी है।'

टीकू उस दिन बाबा से प्रभावित हुआ। उनकी बातों में कहीं आडम्बर नहीं

था। बाबा ने कोई शब्दजाल नहीं फेंका। हर स्थिति का सही विवेचन किया था। टीकू को बाबा की सादगी पसन्द आई। उसके बाद टीकू अक्सर बाबा के पास चला आता। घटों ध्यानयोग और कर्मयोग पर चर्चाए करते न जाने कब मन ही मन भोलेनाथ को गुरु मानने लगा। बाबा भी टीकू को देखकर वैसे ही खुश होते, जैसे गुरु अपने योग्य शिष्य को पाकर। एक दिन अचानक ही बाबा गायब हो गए। उनकी कुटिया खुली पड़ी थी। टीकू बाबा के जाने के बाद एक-दो दफा कुटिया में गया था मगर वहा उसका जी नहीं लगा। बिना बाबा के टीकू को कुटिया प्राण विहीन देह की तरह अप्रिय लगी। टीकू ने बगीचा जाना बन्द कर दिया।

टीकू का परिवार बहुत छोटा था। टीकू उसकी पत्नी और बेटा परसू। परसू जवान हो गया तो टीकू ने उसकी शादी कर दी। शादी के बाद परसू ने गाव मे रोजगार की कमी के कारण शहर का रुख किया। कर्मयोगी बाप की कर्मयोगी सतान और भाग्य के बुलद सितारों से परसू ने थोड़े समय में ही खुद का धधा शुरू कर लिया। मेहनत ने अपना रग जमाया और परसू का धधा चल निकला। पूरी तरह जमने के बाद एक दिन परसू मा-बाप को लाने गाव आया। बेटे की मशा जानकर टीकू ने समझाया कि बेटा हम तो बूढ़े हो चले हैं। घूमने-फिरने की इच्छा भी नहीं रही। अपरिचित जगह मन भी नहीं लगेगा। हम इसी गाव में पीढ़ियों से रहते आए हैं, गाव की माटी का मोह हमसे नहीं छूटेगा। भगवान तुम्हे सलामत रखे कमाई में खूब बरकत दे पर बेटा, हमें हमारी सासें यहीं पूरी करने दो। हा, तुम्हे रोटी पानी की दिक्कत होगी तुम बहू को अपने साथ ले जाओ।

टीकू को अपना गाव छोडना पसन्द नहीं था। वह नहीं गया। परसू सिर्फ अपनी पत्नी को ही ले जा सका। टीकू गाव में खुश था। खुशी कभी स्थाई रही है, जो टीकू की रहती ? टीकू चैन की नींद सो कर सुबह उठा तो पाया कि उसके साथ को रात का घना अधकार लील गया था। टीकू की अर्धांगिनी की जीवन ज्योति सूर्य की रश्मिया फूटने से पहले ही बुझ चुकी थी। सुहानी भोर के समय टीकू का बचा हुआ जीवन अधेरे ने ग्रस लिया। किकर्तव्यविमूढ़ सा टीकू अनन्त ब्रह्माण्ड में टकटकी लगाए ताकता रह गया। गाव वाले निर्जीव देह को फूक आए थे।

खबर सुनकर परसू आया। पितृकर्म करने के पश्चात् जब वापस शहर लौटना था तब उसने टीकू को नहीं छोड़ा। किसके सहारे छोडता ? टीकू भी बेटे से क्या तर्क करता ? निर्विकार खोया-खोया बेटे के साथ हो लिया।



शहर मे टीकू जल्द ही ऊबने लगा। बेटे का अच्छा-भला मकान था। मकान में सारी सुविधाए। नौकर-चाकर। टीकू का कोई काम नौकरो का करने की

इजाजत नहीं थी। बहू हाथ बाधे हरदम तैयार। उसके कान मानो टीकू की आवाज सुनने को बेताब हों। धीमी सी आवाज पर भी बहू तत्काल आ खड़ा होता। टीकू कई बार कह भी देता कि बेटा मेरा इतना चिन्ता मत करो। मैं कोई बच्चा थोडे ही हू? फिर थोड़ा-बहुत चल-फिर कर अपने काम करने म मुझे सुविधा होती है मन को सुकून मिलता है। पर बहू का यह दलील स्वीकार नहीं था। उसके विचार म बाबूजी ने बहुत काम किया था। बहुत कष्ट उठाए थे। बाबूजी की सेवा का मौका ही उसे अब मिला था। वैसे छोड़ता वह ? वह तो बाबूजी को सुख देना चाहती है उनकी सेवा करना चाहता है। परमू भी उसे बाबूजी की सेवा करने के लिए हमेशा कहता रहता था।

टीकू का कर्मयोगी मन ठाले बैठे रहने को तैयार नहीं था। पर टीकू करे भी तो क्या ? बहू है कि किसी चीज के हाथ हा नहीं लगाने देता। उसकी बस एक ही रट है— बाबूजी आपने बहुत काम किया है, आपकी सेवा करना मेरा भी तो अधिकार और कर्तव्य है ! अब आपको कोई काम नहीं करना। आपके सारे काम मैं करूगी। आप बैठे राम नाम की माला जपें और आराम करें।'

टीकू उसे कैसे समझाता कि काम करना उसकी आदत में शुमार है। आदत अपनी तुष्टि चाहती है। कभी का कर्मयोगी टीकू आज ध्यानयोग में अपना जिन्दगी कैसे झोंके ? ध्यानयोग को टीकू जीवन से पलायन मानता है और टीकू भगोड़ा नहीं है। टीकू से रहा नहीं गया। वह अपने कमरे से निकला। दालान में लकड़िया पड़ी थीं। टीकू ने कुल्हाड़ी उठाई और लकड़ियों के पास बैठ कर उनके छोटे-छोटे टुकड़े करने लगा।

बाबूजी, आप यह क्या कर रहे हैं ? बहू ने देखा तो अन्दर से ही टोकते हुए आई।

लकडिया तोड़ रहा हू।'

सो तो मैं भी देख रहा हू पर क्यों तोड़ रहे हैं ? हम मर गए क्या ?'

'ऐसा नहीं कहते बहू , मुझ से ठाले बैठे रहा नहीं गया।'

आप कुल्हाड़ा छोड़िए और कमरे में चलिए। कहीं कुल्हाड़ा की लग जाती तो ? चलिए, मैं चाय लेकर आती हू।'

टीकू अनमना-सा कमरे में चला आया। खाट पर बैठते ही अनायास विचार घुमड़ा— उसका जीवन अब खाट तोड़ने के लिए ही बचा है क्या ? क्या उसके हाथ सिर्फ भोजन करने को ही सलामत हैं ? बहू की पदचाप सुन विचारप्रवाह थम गया। बहू चाय ले आई थी। टीकू ने प्याला थामा और घूट भरने लगा। जब

तब टाकू ने गाय खतम नहा की बहू खड़ी देखता रहा। प्याला खाली होने पर टाकू क हाथ म ही प्याला थाम लिया और आराम करन की फिर ताकीद करत हुए घर क भीतर चला गई। टाकू खाट पर पसरकर निरुद्देश्य हा छत को घूरने लगा।

बाबूजा, यह मैं क्या सुन रहा हू ?

' !'

'बहू कह रहा थी आज आप लकड़िया ताड़ रहे थे ?

हा, पड-पड़ डाल अकड़ गया था, साचा थाड़ी कसरत हा जाएगी।

बहुत कर ला कसरत। लाग कहेंगे, बूढ़े-बाप का चैन नहीं लेन देता। लकडिया तुडवाता है। आप मेरी नाक कटवाना चाहते हैं क्या ? अब अपने किस चीज की कमी है बाबूजी ? आपके आशीर्वाद से सब कुछ तो है मेरे पास ? आज के बाद आप किसा काम के हाथ नहीं लगाएग।'

परसू बाप का भमध्यावन देकर चला गया। टीकू का मन फिर व्याकुल हो उठा। टीकू ने आज तक किसी के बधन को स्वाकार नहीं किया था। जो दिल ने चाहा, किया। उसकी बुद्धि ने भले-बुरे की परख का अच्छी तरह परखा था। फिर कोइ उस पर अपनी सलाह कैसे थोप सकता था ? आज उसक हा बच्चे उस पर पाबन्दी लगा रहे हैं— यह मत करो वह मत करो, कुछ मत करो हुह। टाकू माना उनका बाप नहीं, बच्चा हो। हर बात पर टोका-टोकी, हर बात पर हुक्म ! टाकू को घर, घर नहीं, कैदखाना लगा। कमरे रूपा पिंजरे में वह अपने पख फडफडाकर रह गया।

घर क भीतर वाल कमरे रा टी वा पर समाचार सुनाई दे रहे थे—'गुमशुदा की तलाश —उम्र सत्तर वर्ष कद पाच फुट सात इच, रग गेहुआ, चेहरा गोल— लापता है । टाकू को लगा जैसे वह आजाद हो जाएगा। इस अपरिचित जन-समुद्र मे कतर की तरह वह भा खो जाएगा। सुबह होते हा टाकू आवागमन देखा के बहाने दरवाजे पर आया और मौका पा कर खिसक लिया।

रात घिर आई था। नगर परिषद् क उस पार्क मे मर्करी की तेज पीली रोशनी ने दूब और पेड पौधों के प्राकृतिक रग का हरण कर कृत्रिम बना दिया था। टाकू नींद के अथाह सागर में गोते लगा रहा था कि किसी ने झिझोडकर जगा दिया। आखें खुलते ही टीकू ने फिर आख बद कर लीं। सामने परसू खडा था। आज पहली बार टीकू को अहसास हुआ कि वह भा भगाडा है कायर है, भानानाथ की तरह । सचमुच आज उसने जावन से पलायन किया था गृहस्था से घबराकर कर्मयोग स विचलित हुआ था । टीकू बिना कुछ बोले उठ खडा हुआ और परसू के साथ नजरें झुकाए लौट पड़ा। ●

परम्परा

किसनू का खोखा अब भी रेल की पटरियों के उस पार धरा था। मगर सड़क के किनारे जो कल वीरान हो गए थे, आज फिर आबाद होने की प्रक्रिया शुरू कर चुके थे। तीन पहियों की रेहड़ी पर चाय बनाने का पूरा तामझाम लिए किसनू अपना अडोपा हुई बल्ली की जमीन पर खड़ा चाय बना रहा था। ग्राहकों के बैठने की व्यवस्था कहा होती ? अभी तो उसके भी खड़े रहने में सशय था। कालू कचौरी वाला भी चार पहियों वाले गाड़े पर स्टोव पर परात धरे तैयार कचौरिया लिए सड़क की परली तरफ यथास्थान था। कल कालू का मन बड़ा खिन्न हुआ, जब उस मुच्छड़ पटवारी ने लगभग गाली की जुबान म उसे तान-तमूर उठा लेने का आदेश सुनाया। जाते-जाते बड़बडाया भी था जो आस-पास के लोगों ने साफ सुना— 'स्साले सरकारी जमीन को अपने बाप की समझते हैं।

कालू का मन हुआ कि कह दे— क्यों भाई, तुम जो चल रहे हो, यह जमीन सरकार की नहीं है क्या ? फिर क्यों चलते हो इस पर ? जमीन तो सारी सरकार की ही है, जिन्हें उपयोग करना होता है, करते हैं। चाहे खरीद कर करें। पर जो सर छुपाने की जगह नहीं खरीद सकता, वह दूकान के लिए पैसे कहा से लाए क्या करे ? और फिर इस जमीन को हम भी कहीं उठा कर तो ले जाने स रहे ? रोजी कमाने के लिए फालतू पडी जमीन पर डेरा लगाना कोई अपराध है क्या ? मगर उसने कहा कुछ नहीं। कल की दुश्चिताओं ने ऐसा घेरा कि प्रत्युत्तर की सारी क्षमताए चुक गईं। बनी हुई तैयार कचौरी और मसाले का व्यर्थ होना, बच्चों के मुह से निवाला निकलने के सदृश था। वैस भी हो इस सामान की बिक्री तो उसे करनी ही थी आगे की फिर सोची जानी है ।

पन्नू पनवाड़ी भी गाडे पर अपना शो-केश रखकर तैयार था। सड़क के दोनों किनारों पर बडे-बडे पेड़ अपनी छाया हर आम-खास को बिना किसी भेदभाव के सुलभ कराने को तत्पर थे। इन्हीं की छत्र-छाया में किसनू कालू, पन्नू, हीरू, शास्त्री और राधे जैसे लोग अपना रोजगार चला रहे थे। सभी के घर मजे से चूल्हे जल रहे थे कि यह हादसा हुआ।

ऑफिसों के कर्मचारी चाय-पान की दूकानों पर बैठ चाय की चुस्कियो के

साथ बातचात में मशगूल थे। किसनू की दूकान पर सबस अच्छा ग्राहकी था। हो भा क्या नहीं ? सब जानते थे कि किसनू व्यवहार का खरा आदमी है। किसी स अड़ता नहीं है और चाय बनाने का ऐसा माहिर है कि उसके हाथ की-सी चाय दूसर से लाए जलन करने पर भा न बैठे। टपोरी अपना यार मडली के साथ किसनू की दूकान पर जमा हुआ था। लच का समय खिसकता जा रहा था और साथ-साथ कर्मचारी भी। टपोरी भी अपने साथियों के साथ जाने लगा तो किसनू ने आवाज दे दी टपोरी साब, पैसे नहीं देने क्या ?'

लिख दे।

कितना लिखूं ? खाली लिखते रहने से तो मेरा धधा चलने से रहा ? आपने अभी पिछले माह का भी नहीं दिया।'

अरे मिल जाएगा। क्यों चिल्लाता है ?

हर बार यही कहते हो, कल अगर पैसे नहीं दिए तो आपकी उधार बद। मेरे भी बच्चे हैं, मैंने कोई सदाबरत नहीं खोल रखा है।

क्या कहा तुम ने ? उधार बद! मैं तेरे को चोर नजर आया ? स्साले, तेरी दूकान बद नहीं होगी ? दूकान की आड में जुआ-सट्टा करते हो चकला चलाते हो तुम सब की दूकाने बद करवा दूगा।' टपोरी फन कुचले साप की तरह बल खाता फुफकारता चला गया।

☐

अरविन्द को नौकरी लगे अभी तीन-चार महीने हा हुए थे। कलक्टरी परिसर के बहुत कम कर्मचारियों से उसका परिचय था। पर किसनू को वह अच्छी तरह पहचानने लगा था। पाच दस रुपयों की परवाह यह कभी नहीं करता था। चाय देने और गिलास उठाने वाले सड़क छाप नौकरों के भरोसे किसनू को दूकान छोडते उसने कई बार देखा था। एक दिन उसने किसनू से पूछ ही लिया—'यार किसनू इन लडकों के भरोसे गल्ला छोड कर कैसे चले जाते हो तुम ?'

अरविन्द साब भगवान बडी चीज है। उसने मुझे कभी भूखा नहीं सोने दिया। ये नौकर बेचारे क्या ले जाएंगे ? अगर घाटा हुआ तो इनकी मजदूरी में टाटा नहीं होगा क्या ? दूसरा भी इन्हे मजदूरी पर रखना नहीं चाहेगा फिर ऐसी दूकान इन्हें मिलेगी भी कहा जिसके ये स्वय मालिक से कम नहीं हैं।'

अरविन्द किसनू के तर्क के सामने निरुत्तर था। उसने किसनू की दरियादिली की और पहलवानों की कई कहानियां सुन रखी थीं। एक जमाने में किसनू सीने पर कई बिल्ले लटकाए पूरे शहर के पहलवानों को चुनौती देता घूमता था, पर पहलवानी पेट पालन में सहयोगी नहीं, बाधक ही साबित हुई। फिर शुरू हुआ

उसके बेजोड हुनर का सफर। कभी कबाडी बना तो कभी सड़क पर दत मजन के पुड़िए बेचे कभी हरेक माल दो रुपये का गाडा लगाया तो कभी जादू के तमाशे। किशनू किसी काम मे सकोच नहीं करता था। सकोच सिर्फ भीख मागने अथवा किसी के सामने गिडगिड़ाने में ही मानता था। पर ज्यों-ज्यों उम्र ढलने लगी, उसकी भाग-दौड की क्षमताए भी क्षीण होने लगी। उम्र के उत्तरार्द्ध में इस चाय के खाते में हा उसे अपने बाकी बचे जीवन के सघर्षों के समाधान नजर आये। और वह इस धधे म भी पूरी लगन से लगा था। ऐसा आदमी टपोरी से पैसे का तकाजा करे जरूर कोई खास वजह रही होगी।

क्यों भाई किसनू यह टपोरी कैसे ताव खा रहा था ?' अरविन्द ने अपनी शका का समाधान करने के लिए पूछा।

'कुछ नहीं, साब, इसकी यही फितरत है। जब भी यहा कलक्टर का तबादला होने वाला होता है, यह उधार के पैसे देने बन्द कर देता है। उधारी अधिक होने पर पैसे तो मागने ही पडते हैं मगर यह देने के बजाय दुकान हटवाने की धमकिया देने लगता है। पुरानी फाइल में नई शिकायत डलवाकर फिर से अवैध कब्जे हटवाने के नाम पर हम गरीबों के पेट पर लात मारता है। यह कोई नई बात नहीं है परम्परा-सी बन गई है। हर नए कलक्टर के कार्यकाल मे एक बार तो हमें विस्थापित किया ही जाता है। फिर दूसरे बाबुओं में दया उपजती है और हम धीरे-धीरे फिर यहीं पर अपना धधा करने लग जाते हैं। हम भी आखिर कहा जाए पेट तो पालना ही पडता है ?

'और जो टपोरी बोला—जुआ-सट्टा-चकला वह सब ?

अरे साब, धधे से इतनी फुरसत हा कहा यह सब तो इस टपोरी और इसकी मित्र मडली के ही करतब है। अब इन्हे मना भी तो नहीं किया जा सकता यहा बैठ कर जो भी करते हैं उससे हमें क्या ? अपनी करनी आप ही भोगेंगे।

अरविन्द ने अपनी चाय के पैसे दिए। लच का समय खत्म हो चुका था। वह तेज कदमों से दफ्तर की तरफ बढ़ चला।

❒

हर सत्ता केन्द्र का अपना अलग प्रभा-मडल होता है। सत्ताधीश उस प्रभा-मडल के केन्द्र से लाख सर पटकने के बावजूद भी बाहर नहीं निकल पाता और उसके सही निर्णयों का भी गलत अमल हो जाता है। प्रभा-मडल जिस तरह की किरणें परावर्तित करता है, वैसे ही रग सत्ताधीश को नजर आते है और जन-सामान्य के सघर्षों की तस्वीर के बजाय छाया भी धुधलाती नजर आती है। पुराने समय के सत्ताधीशों में सिर्फ उन्हा राजाओं का प्रजा-पालक के रूप में किवदतियों

वे माध्यम स आज ना याद किया जाता है जो अपने गिर्द रच प्रभा मडला क अभेद्य कवच स रातों में निकलकर अपना प्रजा की महा तलवार देख आया करत थ।

दूसर दिन कलक्टरा क आग लग गाय हट गए थे। सड़क के किनार उजडे-उजड़े-स थ मगर विध्वंस क बाद निर्माण का पुरातन सत्य फिर साकार हो रहा था। इस देखकर अरविन्द का वह सुना हुई कहानी याद हो आई जिसमें राजा क आदमियों ने गाव क मध्य में आने वाला झोंपड़ियों क अवैध कब्जा को हटा दिया। दूसरे दिन उन्होंने अपना झोंपड़िया फिर गाव के बाहर बनानी शुरू कर दीं। तब एक बच्चे न पूछा— बाबा व लाग इन्हें फिर तोड़ देंगे तब ? तब बाबा न उत्तर दिया कि बटा वा पैस वाल हैं, शक्तिशाली हैं शासक हैं। उनका काम था हटाना, उन्होंने हटा दिया। पर हमें रहना तो इसी धरती पर है ? वहा नहीं तो यहा सही, यहा नहीं तो और दो कदम आगे चले जाएंगे। य हमें खदेड़ना तो चाहते हैं, मगर भूल जाते हैं कि खदेड़ेंगे कहा तक ? जिसके पास जमीन का पट्टा नहीं है वह क्या जमीन पर नहीं रहगा ?

अरविन्द खडा सोच ही रहा था कि किसन् की आवाज उसके कानों में पड़ा— अर अरविन्द साब, आइए ? बैठन का ता नहीं कहूगा, चाय पीजिए। अरविन्द के मन में आया कि सीधा जाकर कलक्टर स मिल और प्रभा-मडल की चमक-दमक के घेरे से निकल कर यथार्थ के कठोर धरातल से रूबरू करवाये और टपोरा जैसे स्वार्थी लोगों की हरकतों का पर्दाफाश कर इन गाडों-खाखों को जब तक जरूरी न हो, आबाद रहने दिया जाने का निवेदन करे। इन लोगों के यहा होने का फायदा भी तो कलेक्टरट आने वालो को है और उन्हीं के दम पर ये यहा टिके हुए हैं फिर क्यों इन्हें इनकी औकात बताकर जलील किया जाता है इनका हटना तो किसी समस्या का समाधान नहीं है ।

लाजिए चाय। किसन् ने चाय का गिलास अरविन्द क आगे कर दिया। आज नौकर नहीं था। जिसकी खुद की रोजी का पता न हो वह दूसरे को भला क्या रोजगार दे ?

अरविन्द न चाय पकड़ ली। विचार फिर घूम गए। कलक्टर से उसकी क्या पहचान कहीं टपोरा जैसे को मालूम पड़ा तो उसकी नौकरी भी काटों का ताज बन जाएगा। हर गुलाब के पास काटे होते हैं ठीक टपोरी जैसे । अरविन्द ने चाय का खाली गिलास रेहडी पर रखा। पैसे दिए और चल पडा। वह किसी काटे से दामन उलझाने की सामर्थ्य नहीं रखता था। परम्परा का भूत अमावस्या की रात की तरह हर विचार को अपने घने अधेरे में लादता जा रहा था। अरविन्द का तेजस्वी चेहरा भी उसकी चपट में निस्तेज हो गया था।

दूर सड़क के बीचों बीच अशोक-स्तभ सीना ताने खड़ा था। ●

बेल

सावन का महाना और घनघोर घटाओं का गर्जन। आसमान मे पानी ऐसे बरस रहा था मानो बादल फट पड़े हों। धरती के नगे बदन पर हरियल धान की चूनर शोभायमान थी। रग-बिरगे फूल सितारों की तरह जगमगा रहे थे। धरती की कोख का निपजना—किसानो का समय सुधरना। किसानों के मुह पर मुस्कान और हृदय में अपार उल्लास का सागर ठाठें मार रहा था।

इन्द्रदेव अभी-अभी धरती पर अपने स्नेह की फुहारें डालकर विलग हुए हैं। सूर्य अपने रथ के घोड़ो को रोक, बादलो की ओट में छुप-छुप कर धरती के शर्मीले रूप की छटा निरख रहे हैं। मद हवा के झोके मानो रुक-रुक कर धान की पखुड़ियों से सुख-दुख की बातें कर रहे हो। प्रकृति की छक यौवन भरी पुलक खेतों से लेकर उजाड़-अडाव छेकती दिक्-दिगन्त तक फैल गई थी और पूर्व दिशा मे आकाश की शोभा बढ़ाता कामदेव का धनुष अपने सातों रगो सहित तना खडा था।

कुन्दन अपने लहरें लेते खेत में हिलोरें चढ़े हृदय के साथ झोंपडी से निकला। अब फुहारें बद हो रही थीं। वह टहलता-टहलता खेत के सींवाडे आ चढ़ा। उसकी नजरों के सामने था डोकरी दादी की झोंपडी थापडी के आगे कूमटा और कूमटे के नीचे डोकरी दादी। कुन्दन हृदय के उल्लास का बटवारा करने दादी की तरफ चल पड़ा।

डोकरा दादो और कुन्दन के घर भी खेत की तरह चिपते ही हैं। कुन्दन अपनी समझ पकड़ने के बाद सदा ही डोकरी दादी के जिगर का टुकडा रहा है। बच्चों के साथ खेलते-कूदते जब दादा के बाडे से पीलवाणा के पीलिए तोडकर खाता था, दादी अपनी खाल से छडी लिए निकलती, बच्चो के पीछे दौड़ती। छडी से धमकाते हुए, उन्हें डराकर बाडे से बाहर निकाल देती पर कुन्दन को कुछ नहीं कहती। अपने हाथों से पीलिए तोड़ कर कुन्दन को खिलाता।

दादी के बाडे में तीन पेड थे। पीलवाणी, गूदी और खेजडी। समय के साथ तीनों हो फलों से लद जाते। उन्हे देख कर दादी का ध्यान अनायास ही अपनी सूनी

दादा की तरफ चला जाता और हृदय म टीस-सी उठती। शायद इसी कारण से दादा उनके फल किसी को तोड़ने नहीं देता थी। कुन्दन से दादा का अथाह लगाव था। उस सदा लाड़-लड़ाता और बेटा कहकर बुलाता इन फलों का चखने का एकमात्र अधिकारी वह कुन्दन को ही मानता था। कुन्दन भी अपने घर से अधिक डोकरी दादी क घर पर रहता था।

कई बार शाम के समय कुन्दन दादी के आगन में देर तक खेलता। दादा कुए से आते और दादी उनको भोजन का थाल परोसती। दादा नियम क पक्के थे। पानी का लोटा, आसन और धूपिया सजाने के बाद हाथ-पाव धो कर थाली पर बैठते। थाली स रोटी का पहला निवाला तोड़कर धूपिये पर रखते फिर धूपिये के चारों तरफ लोटे से पानी लेकर कार निकालते और धूपिये को हाथ जोड़कर—'जय हो, भोमियाजी महाराज, अरोगो।' कहने के बाद भोजन करते। भोजन करने के बाद धूपिये से धूप लेकर तिलक लगाते और धूपिये को फिर हाथ जोड कर थाली से उठते। कुन्दन इस क्रिया का मर्म उस समय नहीं जानता था। वह दादा की इस भक्ति-भावना को कौतुक से देखता और दादी से इसका मतलब पूछता। दादी उसे बाहों में भर छाती से लगा लेती। मगर उत्तर नहीं मिलता। घर आकर मा से पूछता तो मा भी बहला देती—

'भोमियाजी महाराज के भोग लगाते है, दादाजी।

बापू तो नहीं लगाते भोग? कुन्दन फिर पूछता।

अपनी-अपनी भक्ति होती है, बेटा, तू अभी छोटा है, बडा होने पर अपने-आप समझ जाएगा। कुन्दन फिर कुछ नहीं पूछता।

डोकरी दादी के परिवार में दादा और दादी दो प्राणी ही थे। खेत और घर उनकी सम्पत्ति थे। धन के नाम पर दादा रोज कुए से पानी निकालकर पीने वालों में से थ। मगर दानों थ बहुत संतोषी और दरियादिल।

एक बार दादा के बुखार चढ़ आया था। दादी उन्हे उकाली (घूटी) बनाकर दे रही थी। कुन्दन ने देखा तो वह भी घूटी लेने क लिए मचलने लगा। दादी न एक बार तो कुन्दन को मना कर दिया मगर तुरन्त ही बोल पडी— जरा रुक बेटा, तुम्हे घूटा अभी बनाकर दे दूगी। कुन्दन खुश हो गया। दादी ने पींपे को टटोला। मुट्ठी भर बाजरी ही बची थी। दादी ने उस बाजरी को निकाल लिया। अब पींपा चूहों की उछलकूद के लिए खुला था। दादा न बाजरी को ऊखल में डाल कर जरा कूटा और फिर छाछ में मिलाकर एक वक्त के भोजन का इन्तजाम किया। मगर दुर्बल को दो आसाढ़। एक भिखारी आ पहुचा। दादा ने उस भी हाथ का उत्तर दिया। भिखारी दुआए देता चला गया।

दादी ने खाट पकड़ी तो ऐसा कि उठने का नाम ही नहीं लिया। दुआओं का असर विधाता के विधान को थोड़े ही पलट डालता ? दादा ने अंतिम सांस ले लीं तब कुन्दन का पता चला कि दादा-दादी दो ही नहीं थे। उनके सगे-संबधी, कुटुम्ब-कबीलेदार दादा के मरते ही जीवित हो गए थे। चैत्र माह में उगते भपोड़ों की तरह पता नहीं किधर किधर से आए। दादा के बारह दिन होने से पहले ही उनमें दादी को अपने साथ ले जाने और घर-खेत को बिकवाने की होड़-सी लग गई। मगर दादी ने उन्हें टका-सा जवाब दे दिया कि उनके लिए तो वही कुटुम्ब-कबीला है, जिसमें दादा ने अपना जिन्दगी गुजारी और अपनत्वभरी पहचान की पोटली को पीछे छोड़, आगे की राह ली। अब इस पोटली की रखवाली का जिम्मा दादी का है, जिसे वह मरते दम तक निभाएगी। इस दो-टूक बात को सुनने के बाद सारे सगे-संबधी गधे के सिर से सींगों की तरह लोप हो गए।

दादी पूरे मौहल्ले की दादी थी। मौहल्ले की पुत्रवधुएं हों, चाहे पौत्र-वधुएं, सभी दादी को दादी कहकर पुकारती थीं। किसी भी व्रत-उपवास, जागरण-त्यौहार, रस्म रिवाज के उत्सव में दादी न पहुंचे, ऐसा कैसे ? दादी ऐसे कामों में सबसे अनुभवी। उनके व्यवहार की आत्मीयता ऐसी कि उनके बिना मौहल्ले की औरतों का सब-कुछ होते हुए भी फीका लगता। मौहल्ले की पुत्रवधुएं जब दादी के पावों की तरफ झुकतीं तो दादी गद्‌गद् हो आशीषों की झड़ी लगा देतीं—रामजी महाराज, तुम्हारी बेल बढ़ाए , अखण्ड सौभाग्यवती-सुहागिन रहो दूधों नहावो, पूतों फलो ।

दादी आशीष ही बांट सकती है। खुद न तो दूधों नहाई-पूतों फली और न ही अखण्ड सौभाग्यवती सुहागिन रही। पर अपने दुख को अपने में ही सीमित कर दादी सभी की भलाई और सुख की माला फेर रही है और अपनी सूनी कोख का दर्द, पूतों फलने के आशीर्वाद के साथ ही भुलाती है।

डोकरी दादी का अतीत कुरेदता हुआ कुन्दन उनके सामने आ पहुंचा। दादी के चेहरे पर पसरी असंख्य टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं उनकी जिन्दगी की लम्बी यात्रा के पड़ावों का परिचय दे रही थीं। गर्दन चाबी के खिलौने सी डग-डग डोल रही थी। आखें, दादा की धुंधली होती याद की तरह अंदर को धंसी हुईं। मगर आंसू की बूंदें सावन की इस बारिश से होड़ लगाए टपा-टप गिर रही थीं।

कुन्दन के मन में एक ही विचार आया कि दादा की याद से दादी का हृदय रोया है परन्तु कुन्दन यह सवाल दादी से पूछे कैसे ? वह उदास हो, चुपचाप पास ही बैठ गया। दादी काफी देर तक रोती रही। जब दुख का गुब्बार आखों के रास्ते निकल गया और हृदय का उद्वेग कुछ नियन्त्रित हुआ तब ओढ़नी के पल्लू से

दादी ने आगे बात की। गिड़गिड़ाकर बोली। कुन्दन पर नजर पड़ते ही दादी के दुख में फिर उफान आ गया। कुन्दन के मन का बांध भी अब टूट गया।

'दादी क्या हुआ? किस बात का दुख है? मुझसे कहो! अभी तो मैं जिन्दा हूँ, आपने मन छोटा किया कैसे?'

'बेटा कुन्दन! भगवान ने यह तो ठान, पर फिर वापस ले ले तब दुख तो होता ही है।' दादी ने रुंधे गले से कहा।

आज क्या ले लिया भगवान ने? आसमान तो अमृत बरसा रहा है।'

'बेटा, यहां सींव के पास दो मचान जितनी बड़ी मतीरे की बेल थी। चूहों ने उसकी जड़ काट दी।' दादी ने अंगुली से बेल की दिशा बताते हुए कहा।

कुन्दन को आश्चर्य हुआ। एक बेल के लिए इतना दुख। उसने दादी को ढाढ़स बंधाते हुए कहा— दादी आप भी गजब करती हैं क्या हुआ एक बेल कट गई तो? और भी तो बहुत बेलें हैं। मेरे खेत की बेल क्या आपकी नहीं हैं? आपको जितने चाहिए उतने मतीरे खाए। इस बेल का क्या? क्या पता इसके कुछ लगता या नहीं? झूठी आशा रहती और पशुओं को चारा तक न होता।'

डाकरी दादी की सुबकियां बंद हो गईं। कुन्दन की बात ने दादी के अन्तस में चोट की। जाते जी दादा ने कितने धूपिए नहीं जिमाए? जय हो, भोमिया जी महाराज अरोगो। पर दादी की कोख नहीं खुलनी थी, सो नहीं खुली। तो क्या उसका जीवन भी बेल की तरह निरर्थक है? नहीं! बेल और औरत एक कैसे हो सकती हैं? बेल तो जड़ होता है, औरत नहीं फर्क है बहुत बड़ा फर्क! बेल कुन्दन के खेत का रस कैसे पी सकता है? बेल कुन्दन के खेत को अपना खेत कैसे कह सकती है नहीं वह बेल की तरह नहीं है।

बेटा कुन्दन! दादी की बूढ़ी आखों में ममता की ज्योति दिपदिपाने लगी। दोनों हाथ कुन्दन को अपने में समेटने को आतुर फैल गए। कुन्दन दादी की गोद में खरगोश की तरह दुबक गया। दादी की गर्दन ने डोलना छोड दिया और पलकें स्नेह के बोझ से बंद हो गईं। ●

गांव

यह गाव भी वैसा ही था जैसे और गाव होते हैं। वही विकास की प्रसव पीड़ा इसे भी था, जो इस जैसे गाव को कस्बे की शक्ल ओढ़ते होता है। कहीं कुछ भी तो ऐसा न था, जिसे देखकर कुछ सोचने के लिए मजबूर होना पड़े। सब कुछ सामान्य। आत्मी । एक-दूजे से हसते-बोलते। सभी के दुख साझा तो सुख भी साझा। कहीं कोई अलगाव नहीं। वैसे तो पास-पास पड़े बर्तन भी बज उठते हैं, पर कोई ऐसी स्थिति नहीं थी, जिसके लिए चिन्तित होना पडे।

इस गाव में भी अलग-अलग मौहल्ले हैं। मौहल्ला का होना गाव को कस्बाई शक्ल ओढ़ाने के लिए नितात आवश्यक है। ठीक वैसे ही जैसे कि बच्चा जनने के लिए कोख का होना। मौहल्ले हैं तो जाहिर है, उनके नाम भी हैं, पर वो नाम मौहल्लों के कम जातियों के अधिक लगते हैं, जैसे—मोचीवाडा-तेलावाड़ा-सासियों का डेरा आदि-आदि, पर जातियो के अब सिर्फ नाम ही रह गए थे। बाशिंदे बदल चुके थे। आबादी के हिसाब से पैसे वाले भी बढ़ते हैं और गरीब भी। गरीब के पास इतना धन नहीं होता कि सुरक्षा के लिहाज से आबादी के मध्य ही रहना मुनासिब हो। इसलिए वह बस्ती के भीतर से अपनी जमीन पैसे वालों को बेचकर बस्ती-बाहर फिर कब्जा कर लेता है। इसी निरतर चलती विकास क्रिया से मौहल्लों के नामों से जातियों की पहचान का अब कोई अर्थ नहीं रह गया। बाहर किए जाने वाले कब्जों की बस्ती का नाम भी अब नयावास हो गया था।

अब कहने को तो आप इसे इसी गाव की कहानी कह लीजिए मगर इतना कहाना तो विश्व के किसी भी कोने में जाए तो भी हर गाव की मिलेगी। हर गाव-कस्बा और शहर इसे अपना कहाना कहेगा और आप सोचेंगे कि जब यह कहानी इन सबकी है, तो फिर अलग क्या है ? अलगाव के बीज आए कहा से उनकी जड़ें जमीन में धसी कैसे इसका पेड उगा क्यों ? इस हवा-पानी दिया किसने ? ऐसी कई बातें आपको परेशान कर सकती हैं। अत इन्हें छेड़िये मत। अभी तक तो इस गाव का हमने देखा भर है। जाना कहा है ? देखने भर से किसी की पहचान होती है क्या ? यह तो इसके भूगोल का ढाचा मात्र है। इसकी गलियों में तो अभी हम दाखिल भी नहीं हुए?

इस गाव की गलिया चौड़ी और हवादार हैं। हवा, जो अनवरत बहता रहता है। गाव व चारो तरफ ऊचे रेताल टाल हैं और इन टीलों स घिरा हुआ यह गाव बिल्कुल तश्तरीनुमा है। हवा, जो चारो ओर से आता है इस गाव स गुजरते हुए इसके निवासियो को सहलाते हुए एक नई ताजगी स भर देता है। इस तश्तरी के पेंदे की जगह पुलिस थाना है। प्रशासन की नुमाइन्दगी यहीं से होता है। थाने के बगल में तहसील है जहा पन्द्रह अगस्त और छब्बीस जनवरी को राष्ट्रीय ध्वज फहराया जाता है। इन्हीं के ठीक सामने नगरपालिका का सार्वजनिक पार्क है जिसम बापू की सगमरमर की आदमकद मूर्ति लाठी के सहारे खडी है। मानो पूरे गाव के हृदय म बापू विराजमान हों और हो भी क्या नहीं एक-आध छोटी मोटी चोरियो को छोड़ दें तो पूरे गाव में सत्य और अहिंसा के ही दर्शन होते हैं।

इस गाव के थाने पर कभी संतरी दुनाली लेकर खड़ा नहीं रहता। ड्यूटी पर तैनात सिपाही समय गुजारने के लिए सामने की पान की दूकान के पास पड़े तख्ते पर ताश के बावन पत्तो के जगल में भटकते रहते है और जब इस भटकाव स ऊब जाते हैं, तो इधर-उधर के दूकानदारों स गप्प लड़ाते हैं और जब इन सब स उकताहट होने लगती है, तो थाने के भीतर बने अपने कमरों में बिखरे हुए सामान के बीच बेतरतीब से पड रहते हैं। ये लोग पहले पाच वर्षों से करवट बदला करते थे, जैसे सरकार करवट बदलती है। पर आजकल दो ढाई वर्षो से इनको करवट बदलनी पड़ती है। कभी कभार इनके सरकारी अफसर गाव की दक्षिणी दिशा म सटकर निकलते राष्ट्रीय राजमार्ग की परली तरफ बने सरकारी विश्राम गृह म घटे दो-घटे विश्राम के लिए रुकते हैं, तब बेचारो की असमय कसरत हो जाती है। पर इतना काम किसी चिन्ता की बात नहीं जिन्दा होने की निशानी मात्र होता है। सो यह भी दावा है कि इस गाव में पुलिस है और जब पुलिस है तो असामाजिक तत्त्व भी होंगे ही । सिर्फ बाजार, थाना तहसील और लम्बी-खुली गलिया किसी गाव का पूरा परिचय थोडे ही होता है ? परिचय के लिए तो लोगो के घरो मे झाकना भी पर्याप्त नहीं होगा। अब इसे परिचय कहे या कुछ और, जिसे जानने के लिए इस गाव में लोग आ रहे हैं और अपनी समझ मुजब आकलन कर रहे हैं।

इस गाव की कम्बाई सूरत ऐसी नहीं थी कि यह विधानसभा क्षेत्र बने। पर, राजनीति ने इसे यह सौभाग्य दिलवा दिया। राजनीति के कारण इस कस्बे की शक्ल कभी खूबसूरत नहीं हुई। इसका कारण यह नहीं था कि यहा के लोगों मे चेतना नहीं थी। इस गाव में भी नेता थे। पर सिर्फ गाव तक सीमित। इससे बाहर जाने का आज तक उन्हें अवसर ही उपलब्ध नहीं हुआ। यहा हर बार नेता थोपा जाता था। ऊपर से न जाने कहा से। पर इस अपेक्षा स यहा धीरे-धीरे कहीं किसी बुझी हुई राख की ढेरी में गर्माहट आने लगी था।

न जाने वो कौन लाग थे, जो बार-बार इस गाव में आने लग थे। उनके पावो की ठोकरो ने गाव की गलियो में बना राख की ढरियों से बुझी हुई राख व उड़ा दिया था। वह राख इस गाव की गलियों में कोहरे की भाति छाने लगी थी एक-दूजे के दिल तो क्या, चहरे भी अनजाने-से लगने लगे थे। बस इतना ही मुकू था कि कहीं कोई चिगारी दबा हुइ राख की ढेरा से बाहर नहीं निकली थी। पर गाव में बहने वाली हवा अब शुद्ध नहीं था। सास के साथ वह हवा फेफडो तक पहुच कर अब ताजगी नहीं देता। एक अजब भारीपन समेटे सास लेने में कठिना पैदा कर रही थी।

आज से पहले इस गाव में कभी ऐसा रोग नहीं फैला था। हवा थी। चार तरफ ऊचे टालों से बहकर आती शुद्ध, ताजगी भरा। पर, अब यहा के लोगों व सास लेने में भा तकलीफ हो रही थी। यह हवा का परिवर्तन ही था कि इस बा गाव के एक नेता को विधानसभा का टिकट मिला। पूरे गाव में हलचल थ हलचल म उत्साह था। उत्साह में उमग थी। उमग म कुछ कर गुजरने का जज़ था। जज्बात-जज्बात ही हाता है। हवा के झोके की तरह यह नर्म भी हो सक है और गम भी। इन्हीं झोंकों में एक झोंका आया। कस्बे के हृदय स्थल पर थ वालों ने एक शिकायत सुना। थान के सामने वाली दूकान पर एक ग्राहक का का डिब्बा गुम हो गया।

दूसरे दिन अलसवेर ही पूरे गाव में एक हवा थी। इस हवा में घी नहीं थ किसी मुर्दे के जलने की दुर्गंध था। रीति अनुसार मुर्दे के जलने की दुर्गंध आए, इसलिए चिता में घी डाला जाता है। पर न जाने कैसे गाव बाहर से बह हुई हवा यह दुर्गंध ढो लाया था कि दूकान वाला लड़का पुलिस वालों की कैद गाव से बाहर ले जाते देखा गया तब जिन्दा था, पर वापस नहीं लौटा। थाने आगे भीड था। भाड में जोश था। उत्तेजना थी। जहा जोश और उत्तेजना हो, व होश की बात करना मुमकिन नहीं होता। सबसे भली चुप होती है। पर, कौन हो ? भाड भला कहीं चुप रहती है ? गाव के नेता को बिना मीटिंग भली मिली। उसने भाषण झाड़ दिया। भाषण से भीड में उबाल आ गया। कोई बासी कढ़ी थोड़े हा थी जा उबाल आकर रह जाती। नारे लगने लगे। मु हवा में लहराने लगीं। तभी किसी भले आदमी ने गाधीजी की मूर्ति पर चढ़ शाति की अपील की। पर, भीड़ में जोश था, उत्तेजना थी, उबाल था। दि नहीं था। नक्कारखाने में तूती की तरह अपील अनसुनी रह गयी। देखते ही दे गाधाजी की मूर्ति की ओर स ओलों के मानिद थाने पर पत्थर बरसने लगे। थाने से भी बीसों बरस पुराने धुए के गोले आकर भीड़ में गिरने लगे। पर, नहीं निकला।

ऐसा था कि यह जो हो रहा था। मन दंग के होंठ सहलाता दिल दहलाता। पुलिस ने मारा—हिन्दू ने मारा—मुसलमान ने मारा—नहीं अपने आप मरा। पर यह कोई नहीं जानता किसने मारा क्यों मारा , पर यह सोचने की फुर्सत किसे थी ? जितनी आवाज, उतनी ही बातें। सभी आन्दोलित थे। देखते ही देखते लगा। सूनी गलियों में पुलिस के बूटों और जीपों-जिप्सियों की आवाजें गूजने लगीं। जिसको जिधर सींग समाए लोग घुस गए। उनके हाथों के हाथ पाव इधर-उधर पर पुलिस के डडे बरसने लगे। गाव की गलिया सूनी हो गईं। देखते ही देखते आबाद गाव वीरान नजर आने लगा। गलियों में जीपों, जिप्सियों और पुलिस के जूतों से उड़ी धूल छाई हुई थी।

किसकी रोटी सिकी किसका चूल्हा बुझा, किसी का पता नहीं चला। चारों तरफ धुध ही धुध। हवा मानो जहरीली हो गयी हो। सासें घुटी-घुटी चल रही थीं। सभी को जैसे खतरा हो, खुलकर सास लो और मरे। जैसे एक युग का पटाक्षेप एक दिन में ही हो गया हो। यह गाव वही है। पर गाव की गलियों में वह हवा नहीं है जो चारों तरफ से बहती थी। पुलिस वालों के चेहरे बदल गए हैं। कई पुलिस वाले भी वही हैं। पर अब वो ताश पत्ते नहीं खेलते चुहलबाजी नहीं करते। दुकान वही हैं और दुकानदार भी, पर सहमे-सहमे और खामोश। परिचय की सारी सूरतें ही जैसे धुधला गई हों। कोई नहीं जानता कि भला किसका हुआ है ? हा बुरा सबका हुआ है, यह सभी जानते हैं। पर सब की जुबानों पर ताले पड़े हैं। कोई नहीं बोलता।

आबाद गाव में भी मरघट का सन्नाटा ऐसा है कभी ? सास लेना भी इतना दूभर हो रहा है लगता है गाव की खुली-चौडी गलिया सकरी हो गयी हों। इनके गाव-शहर के मुहानों को किसी ने बन्द कर दिया हो। अब तो यह लगता ही नहीं कि और गाव भी इस जैसे ही हैं। ऐसा भी कोई गाव होता है भला ? आपको ऐसा नहीं लगता क्या कि इस गाव को आज आपने पहली बार देखा है ? यह वह गाव तो नहीं है न जिसकी कहानी मैं आपको सुनाने वाला था ? शायद मैं भटक गया हू। कहीं आपको मेरा गाव नजर आए तो वहा तक पहुचाने में मेरी मदद कीजिएगा। मैं आपको मेरे गाव की कहानी सुनाऊगा। मेरा गाव जिन्दा इन्सानों की बस्ती था। ●

मजिल

हरिया इस बस-स्टेण्ड पर आया था तब बहुत छोटा था और बस-स्टेण्ड भी। गिनती की गाड़िया था और गिनती की दूकानें। दूकानों पर बसों के स्टाफ और यात्रियों की ही बिक्री थी। बस-स्टण्ड बस्ता स काफी दूर था। उस वक्त हरिया पता नहीं किस बस में बैठकर, वहा स यहा आया। पर यहा आने के बाद वह कहीं नहीं गया। यहीं का हाकर रह गया।

आदमी जब कहीं से आता है, तो कुछ खट्टी-मीठी यादें भी अपने साथ लाता है। पर हरिया क पास कुछ नहा था। सिवाय तन ढापने वाली बनियान और लम्बे लटकते नाड़े वाले कच्छ के। बस वालों न उसकी टिकट के लिए शायद इसालिए नहीं पूछा था कि वह बहुत छोटा था। पर, इस छाटे-से बस-स्टेण्ड पर अकेले हरिया का वहा की गिनी-चुनी निगाहा ने बहुत जल्द अपने दायरे में समेट लिया था। उन अजनबी निगाहों के अजनबी सवालों के जवाब में हरिया की निगाहें खामोश झुकी रहीं। गर्दन से ना की जुम्बिश होती रही और हरिया इस छोटे से बस-स्टेण्ट का छोटा सा हिस्सा बन गया।

दानू चाय वाले के चाय क ग्लास धोना सरतू चाट वाले की चाट की प्लेटें साफ करना और बस में बैठे यात्रिया को चाट-पकौड़, चाय-पानी देने जैसे काम हरिया करता और बदले म उसे दूकानदारों से भरपट भाजन मिलता। रात मे सोने के लिए बसें ही उसका मकान थीं। गर्मियों में बस की छत पर और सर्दियों म भीतर सीट पर उसका बिछौना होता। छोटी-सी उम्र की छोटी-सी जरूरत। हरिया के लिए और कुछ सोचने वाला भी कोई नहीं था। और यह जो कुछ उसे मिल रहा था, वह भी किसी की दया नहीं थी। यह तो उसकी अपनी मेहनत का फल था। सुबह से शाम तक चक्करघिन्नी की तरह घूमता रहता था वह। तब जाकर उसे पेट भरने का सामान मिलता था।

भरने को तो सभी का पेट भरता है बिना पट भरे कोई कितने दिन जी सका है ? हरिया उस बुढ़िया को देखता जो हर यात्री स पैसे मागती थी, सुबह से शाम तक उसकी याचक निगाहें और करुणार्द्र गिडगिड़ाहट कहीं विराम नहीं

लता थी। वह जब नानू से नाय की याचना करता तो दानू हिकारत म उसे फिडक दिया करता था। सरतू चाट वाला भी वासा-सड़े हुए कचौरा समोसे किमा मरियल कुत्ते के आग डाल देता था। पर बुढ़िया म पैसे लिए बिना कुछ नहा देता था। हरिया का उस बुढ़िया म बहुत हमदर्दी था। उसका बाल-मन बहुत चाहता कि वह उसक लिए कुछ कर पर उसके चाहने से क्या हाता ? तब वह बहुत छोटा था और बस-स्टण्ड भा।

बस-स्टेण्ड, जहा दूर दूर से भाति-भाति के लाग आते हैं, जाते हैं। लाग जहा से चलते हैं वहा क सस्कार उनक साथ-साथ चलते हैं। भिन-भिन लागों के भिन-भिन सस्कार। अलग-अलग जगहों के अलग-अलग तौर-तरीके। सस्कार कभी किसा के छूटते नहीं हैं, पर दूसरों के सम्पर्क में आकर अछूते भी नहीं रह जाते। सभा अपने-अपन सस्कारों में जाते हैं। यह बात अलहदा है कि कोई किसी से प्रभावित होकर अपने विचारों मे थोड़ा रद्दो-बदल कर लें। पर हरिया क्या कर ? जब वह यहा पर आया था, उसके साथ कुछ भी नहीं था सिवाय लम्बे लटकते नाडे वाले पट्टादार कच्छे और बनियान क। वे भी अब तार-तार हा चुके थे जिन्हे उसन बडे जतन से सहेज कर रखा था। उसे जो कुछ भी मिला, यहीं पर मिला था।

मैला चिकट बनियान की जगह रेडिमेड टी-शर्ट और लम्बे लटकते नाडे वाले कच्छे की जगह जब हरिया पायजामा पहनने लगा तो दीनू के चाय के ग्लास और सरतू की चाट की प्लेटें धोने से परहेज करने लगा था। हरिया के कद क साथ-साथ बस-स्टेण्ड का कद भी बढ़ रहा था। बसो की सख्या भी कई गुना बढ़ गई थी और उन्हीं के अनुपात मे दूकानों की सख्या भा। कई नए बस रूट भी शुरू हो गए थे। बस्ता भा सरकते-सरकते बस-स्टेण्ड स सट गई था। यात्रियों की भाड़-भाड़ भा बस-स्टेण्ड पर अच्छी-खासी रहने लगा थी।

अब हरिया कुछ बड़ा हो गया था। होठा के ऊपर हल्की-हल्की मूछें उभरने लगा थी। दिमाग मे भा कई तरह के विचार उभरने लगे थे। मसलन वह कौन है ? कहा से आया है ? कैसे आया ? क्या उसके भा मा बाप भाई-बहिन, सगे-सम्बन्धी हैं ? पर हर बार ये विचार निरुत्तर रहकर क्षीण हो जाते। उसे इतना हा याद रहता कि यह बस स्टेण्ड और यहा के परिचित अपरिचित चेहरे ही उसके अपने हैं। और इन्हीं अपनों ने हरिया की बढ़ता उम्र क तकाजे से उसके लिए नया काम निकाल लिया था। अब ज्यों हा बस आकर रुकता, हरिया की आवाज गूजने लगता— रामगढ़ फतेहपुर-थैलासर झुझुनू-बिसाऊ-झुझुनू , चलिए साहब गाडा रवाना होने वाला है, चलिए रामगढ़ फतेहपुर-थैलासर ।'

हरिया की गूजती आवाज में जहा एक तरफ यात्रियों का भला होता था, वहीं दूसरी तरफ बस-मालिकों का भी। यात्रियों को पूछ ताछ नहीं करना पड़ती थी और बस वालों को सवारियों की चिन्ता नहीं रहती थी, पर हरिया को पैसे उन वालों से ही मिलते थे। यह व्यवस्था प्राईवेट बस वालों और हरिया की अपनी थी। पर बस स्टण्ड पर बुकिंग कार्यालय भी खुल गया था और सरकारी बसें भी चलती थीं। बुकिंग बाबू के विचार ने भी अंगड़ाई ली और हरिया की तरक्की हो गई।

बुकिंग कार्यालय के ऊपर टीन की चद्दरें डालकर हरिया के लिए छत की व्यवस्था की गई। एक लाउड स्पीकर लगाया गया और हरिया उद्घोषक बन गया। चाट की प्लेटें और चाय के ग्लास धोने के सफर से गुजरते हुए हरिया इस मुकाम तक पहुच गया। पर, अब भी उसकी तनख्वाह बसों के ड्राईवरों मालिकों की मर्जी की मोहताज था। और हरिया का शरीर था कि नड़ रहा था। इस स्थायित्व के साथ ही उसके विचार भी स्थायित्व की तलाश में थे। पर, अभी तक उसे ऐसा पहलू नजर नहीं आया था, जिससे वह अपने लिए कुछ सोचता। उसके विचारों में अब भी भटकाव था। उसके पास आज भी वह फटी-पुरानी बनियान और लम्बे लटकते नाड़े वाला पट्टेदार कच्छा सुरक्षित था। अपनी जड़ों से जुड़ने की एक कशिश उसके भीतर थी जो इन्हें देखकर और अधिक बलवती होती थी। पर, आज तक हासिल कुछ भी नहीं कर पाया था। अपने तार-तार अतीत के धागों को जोड़ने की कोशिश में उसकी नजरें भटकती-भटकती थक जाती और उद्देश्यहीन विचारों के रेले थम जाते, तब वह कच्छे-बनियान को अपनी पोटली में बांधकर रख लेता और अपने आज में मगन होने की कोशिश में लग जाता।

कई बार हरिया उस बुढ़िया के बारे में सोचता। तब उसे उस बुढ़िया में अपना ही बिम्ब दिखाई देता। कितनी समानता थी दोनों में ! वह भी तो हरिया की तरह निपट अकेली थी ! बस ले-देकर यह बस-स्टेण्ड और यहा के लोग उसके अपने थे। यह अपनेपन का बोध भी हरिया को कहीं अन्दर तक बेधता था। इतनी घृणा और अपमान सहकर भी वह बुढ़िया किसी का बुरा नहीं मानती थी। उसके मुंह से दुआ के सिवा किसी के लिए कुछ नहीं निकलता था। यह उस बुढ़िया की लाचारी नहीं थी कि वह यहीं पर रहे। पर यहा के लोगों, यहा की जमीन से उसका अपनत्व ही उसे यहा से कहीं जाने नहीं देता था।

हरिया जब से इस छत के नीचे उद्घोषक बना है, जमीन से उसका जुड़ाव बहुत हद तक कम हो गया है। अब उसे यात्रियों की परेशानियां दिखाई नहीं देती। चाट पकौड़े और चाय के ग्लास वाले किसी हरिया की मजबूरी दिखाई नहीं देती। यहीं नहीं अपने से समानता करने का सुकून देने वाला वह बुढ़िया भी दिखाई नहीं देता। न ही उसकी गिडगिड़ाती याचक आवाज उसके कानों से टकराती है। बस

नम्बर और गतव्य के नाम की अपना ही गूजती आवाज के अलावा अब इस ऊचाई पर अधिक कुछ सुनाई नहीं पड़ता। रोज रात जब बस स्टैंड ऑफ हो जाते हैं हरिया खाना खाने नीचे उतरता है। तब कुछ देर के लिए वह वापस अपने धरातल पर खड़ा होता है।

आज जब वह खाना खाने नीचे आया तो उसे अपनी जमीन खिसकती नजर आई। सुनकर उसे विश्वास नहीं हुआ। उम्र भर गिड़गिड़ाती-याचना करती दुत्कार सहकर दुआएं बांटती वह बुढ़िया मर गई थी। मरना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। पर उसके दो अच्छे-भले, खाते-पीते बेटे होना वाकई चकित करता था। हरिया का मन अशान्त हो गया। दो जवान बेटों के होते हुए बुढ़िया ने क्या पाया ? सुना कि बुढ़िया की पोटली में खूब रुपये पैसे निकले। तो क्या ये लड़के सिर्फ पैसों के लिए बुढ़िया को मां का दर्जा देने आए थे ? अब बुढ़िया लावारिस भिखारिन नहीं उनकी मां थी। तो क्या जिस वजूद की कसक लिए हरिया जी रहा है वह मरने के बाद अपनी सूखी घृणित पहचान लिए हरिया के आज को निगल जाएगा ? इस वजूद का क्या फायदा जो जीते जी सुकून न दे और मरने के बाद उसकी अपनी पहचान भी न रहे ।

हरिया ने ऊपर आकर अपनी पोटली संभाली। पोटली से मैला चिकट बनियान और लम्बे लटकते नाड़े वाला पट्टीदार कच्छा निकाला। उसकी पहचान इतनी-सी ही थी, जो उसे उसके आज से जुदा कर अतीत की तरफ धकेलती थी। पर, अब हरिया को अपनी उस पहचान की कोई आवश्यकता नहीं रह गई थी। उसे लग रहा था कि वह उसकी असली पहचान को मिटाने का सामान मात्र है। वह उन्हें लेकर नीचे जमीन पर आया और उन्हें जला कर हाथ तापने लगा। उसकी अनवरत तलाश को आज विराम लग गया था। उसके अस्थिर विचार अपनी मंजिल पा चुके थे। वह हरिया है। किसी का कुछ भी नहीं। जिस का वह था उससे उसने अपने हाथ ताप लिए थे। अब उसके अवशेष भी मिट्टी में मिल चुके थे। अब वह इसी बस-स्टेण्ड का था। उसे जो कुछ मिला यहीं पर मिला था। उसके संस्कार भी यहीं के थे और वह इन्हीं संस्कारों में जीना चाहता था। अब हरिया को बुढ़िया से अपनी समानता का सुकून नहीं चाहिए था। सारा बोझ जैसे एक साथ उसने झटक दिया हो। उसके कदम बुकिंग के ऊपर बने अपने उद्घोषक कक्ष की तरफ बढ़ने लगे। वह खुद को बहुत हल्का महसूस कर रहा था। ●

वीजा आएगा

छोटा-सा गाव छोटे-छोटे काम। यहा सिवाय खेत और पशु के कोई धन नहीं है। पशु । कई मायनो मे पशु होना भी अपने आप में नियामत है। पशु हमेशा आदमी के काम आते हैं। खाने को दूध-मास और पहनने को ऊन-चमड़ा। फिर भी कभी शिकायत नहीं करते । ग्वाले की एक आवाज पर इकट्ठे हो जाते हैं। पर, बदले में *आदमी भी तो उनके खाने की व्यवस्था करता है* । खेत । जितना जोता उतनी ही फसल। सिवाय पानी के कुछ नहीं चाहिए। पर, पानी इस गाव की रोहा में कहा ? प्रकृति की मेहर हो, समय पर पानी बरसे तो चौमासे की एक फसल पशु और आदमी से बारह महीने नहीं खूटे। पर, इस गाव में क्या, पूरे इलाके में दूर-दूर तक फैले बालुई रेत के सोनलिया टीबे अपनी तपन कभी-कभार ही मिटा पाते हैं। गाव में एक ही मकान पक्का था। चौधरी हरभजन का। बाकी चोंपड़े और कच्ची सालें। गाव-बाहर एक जोहड़ है। भीतर कुआ। पशु जोहड का पानी पीते हैं। आदमी कुए का। पर जमाना कभी-कभार ही होता है। अक्सर पशुओं को भी कुए से पानी निकाल कर पिलाना पड़ता है। इस गाव में भी सभी तरह के लोग है। काले-गोरे, भले-बुरे मेहनती-आलसी। पर बात आदमी की है, तो आदमी तलाशना पडता है। शहरों मे भी और गाव में भी। इसी गाव में हेमन्त है , पढ़ा-लिखा बेरोजगार और अनपढ़ मेहनती जुगनू ताऊ । हेमन्त ने रोजगार की जुगत में जगह-जगह की खाक छानी। घाट-घाट का पानी पिया और अन्तत दिल्ली से इस गाव के चक्कर लगाने के चक्कर में पडा। गाव वालों की आवश्यकता की छोटी-मोटी चिजें लालकिले और कबाड़ा बाजार से सस्ते में उठा लाता और यहा लाभ लेकर बेचता। उसके रोजगार की गाडी भी रेलगाडी के साथ-साथ रेंग रही थी।

अब इस गाव में चौधरी हरभजन का ही मकान पक्का नहीं रहा है। जिनकू धोबी और रहमत बिसायती के मकान भी पक्के हो गए हैं। सौ-सौ बीघा जमीन भी खरीद ली है। गाव में पैसा नहीं है। शहर में पैसा है। पर गाव वालों को किसी की रहमत के बिना काम-धधा तो मिल जाता है, पर उससे इतना ही पैसा मिलता

है कि दो जून रोटी मिल जाए। जिनकू धोजा और रहमत बिसायती के लड़के परदेश कमाने गए थे। वे मुसाफिरी बाद हो उनकी कमाई से पीढ़ियों के पाप धुल गए। इन्हें देख कर जुगनू ताऊ के विचारों ने भी करवट बदली।

जुगनू ताऊ ! हां, पूरा गांव उन्हें इसी नाम से पुकारता था। उम्र में बड़े भी जुगनू को ताऊ ही कहते थे। मां-बाप की काफी मिन्नतों के बाद ईश्वर की कृपा से जुगनू का जन्म हुआ था। गांव के पण्डित ने यह भला-सा नाम सुझाया और मां-बाप की आंखों का तारा, उनके कच्चे आंगन में जुगनू की तरह चमकने लगा था। मां-बाप की इकलौती संतान जुगनू बचपन से किशोरवय की तरफ बढ़ हो रहा था कि एक एक कर दोनों एक ही दिन में पार पड़े। जुगनू अब निपट अकेला हो गया। रोटी-पानी की चिन्ता अब उसे थी। चौधरी हरभजन के रेवड़ ने उसे इस चिन्ता से मुक्त किया था। रेवड़ चराने के साथ साथ जुगनू और भी छोटे-मोटे काम कर दिया करता था। उम्र के साथ-साथ उसका शरीर भी बढ़ रहा था। पर उसके शादी-ब्याह की चिन्ता करने वाला कोई नहीं था।

आदमी एक ही जैसा काम करते हुए ऊब जाता है। जब जीवन में भांति-भांति के रंग बिखरे पड़े हों, तो कोई एक ही रंग का कैसे होकर रहे ? माना कि जुगनू के पास अधिक साधन नहीं थे, अधिक क्या, साधन थे ही नहीं। पर, गांव था गांव के लोग थे। खेत थे, खेती के काम थे। जुगनू को भी रेवड़ चराते चराते उकताहट ने घेर लिया था। यह ठीक था कि गांव में जब भी अकाल की आहट होती जुगनू रेवड़ को गांव-बाहर हांक लेता। इसी क्रम में उसने गुजरात-महाराष्ट्र हरियाणा पंजाब के कई सीमावर्ती गांवों की रोही के नजारे देखे। लहलहाते खेतों को देखकर उसने सोचा था कि काश उसके गांव की रोही भी ऐसी हरी-भरी हो जाए।

सोचने को आदमी बहुत कुछ सोचता है। पर होने या करने के सवाल पर बहुत कठिनाई आती है। कठिनाई से घबराकर अगर सोचना ही बन्द कर दिया जाए तो आदमी करेगा क्या ? पशु पक्षियों से आदमी इसी बात में तो आदमी है कि वह सोचता है। सोचने के बाद ही कुछ करता है । भले-बुरे की तमीज भी तो सोचने से ही आ पाती है ।

☐

हेमन्त इस वक्त रेल के डिब्बे में अपना सामान रखकर खिड़की के पास वाली सीट पर अपना कब्जा जमा चुका था। बैसाख की उमस भरी शाम थी। रेल के पंखे भी बाहर की तप्त हवाओं की भांति कोई सुकून देने में असमर्थ थे। प्रकृति के इस प्रकोप से निजात दिलाने में भी प्रकृति ही समर्थ था। शरीर के मसामों से जब ढेर-

सा पसीना चुचुआता तो गर्म हवा भा उससे टकरा कर ठंडी लगता। डिब्बे में और भी यात्रा थे। पर हेमन्त को उनसे कोई विशेष लगाव नहीं था। रात-दिन सफर करते-करते वह इनका अभ्यस्त हो चुका था। सामने की सीट पर एक बूढ़ा-बुढ़िया बैठे थे। हेमन्त क पास एक मूछों वाले सज्जन बैठे थे, जिनका भारी-भरकम शरीर बेतरतीबी स फैला हुआ था। ऊपर की दोनों बर्थों पर दो युवक, जो हेमन्त के ही हमउम्र थे, लेटे हुए किसी फिल्मी पत्रिका के रंगीन पृष्ठों को ललचाई निगाहों से पा रहे थे। हेमन्त ने एक सरसरी नजर उन सब पर डाली और फिर अपने सामान को सीट के नीचे ठीक-से लगाकर खिड़की से बाहर झांकने लगा।

गाड़ी आहिस्ता-आहिस्ता प्लेटफार्म से रेंगने लगी थी। शहर की लाईटों की रोशनी धीरे-धीरे पाछे छूटती जा रही थी। अमावस्या की काली अंधेरी रात सब कुछ लील चुकी थी। अब बाहर कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। उमस भरी रात और गाड़ी के खड-धम खड़-धम के लयबद्ध संगीत का असर सहयात्रियों पर होने लगा था। जिसे जैसी जगह मिली, वह वैसे ही आड़ा-तिरछा ऊंघने लगा था। हेमन्त ने भी खिड़की से टेक लगा ली। पर हवा की गर्मी से उसे नींद नहीं आ रही था। आखे यू हा बंद किए वह अपने गाव के छोटे-से स्टेशन तक पहुच गया था।

प्लेटफार्म पर जुगनू ताऊ उसका इन्तजार कर रहे हैं। उसके उतरते हा लपककर पास आएंगे। आते वक्त उनके चेहरे पर अजीब-सी चमक होगी। बिना किसी लाग लपेट के वह पूछेंगे—'वीजा लाया बेटे?' और जवाब में वह वीजा निकालकर ताऊ के हाथ में देगा, तब ' ताऊ के चेहरे के भाव क्या-क्या होंगे ? वह खुशी से उसे बाहों में भरकर ऊपर उठा लेंगे और हेमन्त के विचारों में कल्पना के पंख लग गए।

जुगनू ताऊ ने चौधरी हरभजन का रेवड़ चराना कब का छोड़ दिया था। गाव में सभी के घर वह बेगार करता था। नि स्वार्थ बेगार और वह भी अपने मन से। छान-झोंपड़े बनवाने से लेकर खेत-खलिहान तक जहा भी किसी ने उसे याद किया अलादीन के जिन्न की भांति जुगनू वहा पर चमकने लगता था। उसके रोटी-पानी की व्यवस्था वहा होनी ही थी। और किसी चीज की जुगनू को भी कोई आवश्यकता नहीं थी। पर जब से जिनकू धोबी और रहमत बिसायती के लड़कों ने परदेश स पैसा कमाकर भेजा है, जुगनू के विचारों में भा क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। उसने अपने घर और बाड़े को चौधरी हरभजन क यहा गिरवी रखा और जिनकू से मिलकर अपना पासपोर्ट बनवाकर परदेश जाने के मसूबे बांधे। गाव के लोगों ने उसे बहुत समझाया था, पर धुन का पक्का जुगनू टस से मस नहीं हुआ। उसकी इस लगन को देख कर जिनकू और रहमत ने भा वीजा आने पर उसकी टिकट क पैसों का इन्तजाम करने का भरोसा दे दिया था। हेमन्त को भा जुगनू ताऊ अच्छा लगता

गा। पर बिना काम ने अधिक बातें भी ता नहीं हो पाती ? मा हेमन्त भी औरों की तरह ही जुगनू को एक मेहनती और सबके काम आने वाले अच्छे इसान के रूप में ही जानता था। पर, जब से जुगनू ने अपना पासपोर्ट ब्रिटिश जाने के लिए इमाइल एजेन्ट को दिया था, हेमन्त और जुगनू ताऊ के बीच एक अनदेखा रिश्ता बन गया था। ज्यो ही हेमन्त स्टेशन पर उतरता जुगनू की आखें जगमगाने लगती। "बेटा बाजा लाया क्या ?" पूछने के साथ ही उनकी आशा भरी निगाहें हेमन्त के होंठों से हा सुनने को तरसतीं। पर, हेमन्त के नकारात्मक उत्तर के साथ ही सामोश उदासी उनके चेहरे पर हावी होने लगती। स्टेशन से बाहर पूरे गाव के मात्र दो ताग थे, जो सवारी के इन्तजार में खडे होते। जुगनू ताऊ, हेमन्त के साथ उन तक आता और फिर पैदल ही गाव की तरफ चल पड़ता। कभी कभार सवारी पूरी नहीं होती तो तागे वाला उन्हें बिना पैसे के आवभगत से बैठा लेता। ऐसी ही एक शुरुआती यात्रा के दौरान हेमन्त ने जुगनू ताऊ से पूछा था कि ताऊ इस बुढ़ापे में परदेश जाकर क्या करोगे? कौन है आपके पीछे, जिनके लिए आप पैसे कमाकर लाना चाहते हैं? जवाब में जुगनू ताऊ ने जो कहा, हेमन्त उसे सुनता ही रहा। स्टेशन से गाव तक तीन किलोमीटर का रास्ता कब खत्म हुआ, उसे पता ही नहीं चला।

जुगनू ताऊ ने हस कर कहा था— कौन नहीं है बेटा मेरा ? तुम इस गाव के लोग , यह गाव-यह देश बता मेरा कौन नहीं है ? यह सब कुछ मेरा ही तो है। इनके लिए मेरा भी कुछ फर्ज बनता है , मैं नहीं चाहता कि कल किसी और जुगनू को चौधरी हरभजन के रेवड की भूख मिटाने की चिन्ता में दूसरे राज्यों की राहों मे दर-दर भटकना पडे। अपना गाव भी हरा-भरा हो सकता है। कुए बन जाए , बिजली लग जाए तो यहा भी हरियाली आ सकती है । गाव के बेरोजगार हाथों को काम मिल सकता है। सोचो बेटा, यहा पर अंग्रेज आए थे, उन्होंने हमारे मुल्क को लूटा और यहा की दौलत अपने देश मे ले गए धनवान बन गए और हम ? हम लुटेरे नहीं हैं पर कामचोर भी तो नहीं हैं ? हमारे लोग बाहर श्रमदान कर अपने देश के लिए पैसे कमाते हैं तो इससे हमारा देश ही धनवान होगा । मेरा कमाया पैसा मेरे गाव-देश के ही काम आएगा । कल को गाव मुझे याद करेगा में अपने गाव को हरा-भरा देखना चाहता हू।

तागा गाव के बीचो-बीच बने चौराहे पर रुक गया था। यहीं इस गाव का छोटा-सा बाजार था। जहा पर आठ दस दूकानें, जो कच्ची-पक्की सालों की बनी थी। जुगनू ताऊ तागे से उतरकर अपने घर की ओर चल पडा। हेमन्त भी उतरा और लाए हुए सामान को दूकानो पर वितरित करने लगा। पर, जुगनू ताऊ के

विचारों की महानता उसे अब भी अभिभूत किए जा रहा था। उसकी नजरों में आज जुगनू ताऊ एक नए रूप में खड़ा था।

❒

सुबह की किरण फूट पड़ी थीं। अर्द्धरात्रि के बाद की सुहानी हवाएं फिर गर्म मिजाज के साथ चल पड़ी थीं। हेमन्त सोचते-सोचते कब सोया था, उसे नहीं पता। पर आंख खुलते ही पहचान के लिए उसने खिड़की से रेल की पटरियों के समानान्तर लगे टेलीफोन के खम्भे पर लटकती दूरी-सूचक पट्टी पर निगाहें डालीं। गांव आने में पन्द्रह मील का फासला था। वह उठा और दैनिक कर्म में जुट गया। स्टेशन तक पहुंचते-पहुंचते वह फारिग हो चुका था।

स्टेशन पर पांव धरते ही हेमन्त को अचंभा हुआ। आज जुगनू ताऊ उसे नजर नहीं आया। स्टेशन अजब सूनेपन से घिरा था। उसने अपना सामान उठाया और स्टेशन से बाहर निकल आया। बाहर तांगे भी नहीं थे। उसने सामान के थैलों को कंधे पर रखा और पैदल ही गांव की ओर चल पड़ा। चौराहे पर दूकानें भी बन्द थीं। उसने सामान के थैले रहमत बिसायती के घर पर रखे। सूनेपन का कारण पूछने पर रहमत की घरवाली ने उसे बताया कि जुगनू ताऊ मर गया है। सभी उसकी शवयात्रा में गए हैं।

हेमन्त अपनी अनायास भर आई आंखों से आंसू पोंछता वहां से सीधा श्मशान की ओर चल पड़ा। जुगनू की चिता जल उठी थी। वह चिता के पास जा पहुंचा। पर चिता से उठकर जुगनू ने उसे बाहों में नहीं भरा था। उसे लगा जैसे चिता से आवाज आई हो— वीजा लाया बेटे?' उसने अपना पट की जेब में पड़े वीजा के कागजातों को टटोला। प्रथानुसार सभी श्मशान से लकड़ियां चुन-चुन कर जलती चिता में अंतिम आहूति दे रहे थे। पर हेमन्त लकड़ियां नहीं चुन पाया। उसने वीजा के कागजातों को निकाला और चिता की तरफ उछाल दिया। जुगनू ताऊ के चेहरे के भाव वह नहीं पढ़ पाया। धीरे-धीरे सभी वहां से जाने लगे थे। अब चिता में सिर्फ अंगारे दहक रहे थे। हेमन्त भी सिर झुकाए लौट पड़ा। उसे लग रहा था जैसे जुगनू को विदेश जाने के लिए विदा कर सूने प्लेटफार्म से लौट रहा हो। ●

ढलती शाम

बेटा, रतन ! चिलम पर अगारा रखकर लाना। हरखू ने रतनी को दो-तीन बार कहा।

'आई दादासा, लाई दादोसा।'

हरखू की आवाज के साथ रतनी का प्रत्युत्तर आया, पर वह नहीं आई। रतना गट्टे खेलने में मशगूल था। गट्टा की रम्मत का मजा छूटता-सा छूटे हरखू का धीरज छूट गया। उसे चिलम की तलब जबरी थी। चिलम हाथ म लेकर वह सीधा रसोई वाले झोपड के आगे जा खडा हुआ। रतना की मा पडौसिन के साथ गप्पें मार रही थी। हरखू ने खखार कर अपनी उपस्थिति जतलाई और भीतर घुस गया। बहुओं ने उसे देखकर ओढ़ना के पल्लू से मुह ढक परदा किया। हरखू चूल्हे के आगे बैठ गया। चिमटे से अगारे पकडकर चिलम पर रखे। दो-तीन कश वहीं पर लगाकर चिलम को जगाया और उठकर झोंपडे से निकल गया।

दादा को शर्म ही नहीं आती, कुछ तो ध्यान रखना चाहिए बहुओ मे भी साधा आ घुसा, बच्चों से ही मगवा लेता अगारा ? पडौसिन ने वार्तालाप में खलल पडने से दादा पर खीझ निकाली।

क्या बताऊ बहन , अगारे तो इनके कलेजे म सुलगते है। चूल्हा-चाकी टटोले बिना इन्हें चैन कहा ? क्या पता बहू क्या बनाकर खा ले ?' रतनी की मा ने पड़ौसिन का साथ देते दो कदम और बढ़ाए।

'क्यों ? इन्हे कमाकर लाना पड़ता है क्या ?'

'अब क्या बताऊ बहन ? इनका बेटा इन्हें कहता भी है कि आप बैठे माला फेरिये राम नाम का जाप कीजिए। हम हमारा खींचेंगे ओढ़ेंगे। आप सारी चिन्ता छोड दें। पर, ये हैं कि अपना टाग अड़ाए बिना मानते नहीं। क्या पता इन्हें क्या सुकून मिलता है।

अपनी साल की तरफ बढ़ते हुए हरखू के कानों में बहुओं के बोल पिघले शीशे की तरह उतरते चले गए। परन्तु वह वापस मुड़कर क्या बोले ? मर्यादा के

अनताल बाझ स दबा चुपचाप अपनी साल में आ गया। खटिया पर बैठ कर चिलम पाने लगा। चिलम में तम्बाखू कम जल रही थी और बहुओं के बाल स हरखू का कलेजा अधिक फुक रहा था।

भोमिये की मा का गुजर अभी तेरह महाने भी पूर नहीं हुए। पिछल माह ही तो उसकी बरसी थी पर, इतना बदलाव ! हरखू को लगा माना युग बात गए हैं। भामिय की मा जिन्दा थी तब हरखू को कभी ऐसे बोल नहीं सुनन पडे थे। तब ता वह ससारा भी धार से करता था। भामिय क झापड़ को छोड सार घर में बेफिक्र डोलना था। चूल्ह क पास बैठकर खाना खाता था। पर, अब ? बात बात पर बहू के ताने ! न सुनन क लिए एक हा साधन बचा है—साल! पर हरखू भा क्या करे ? चौबीसों घटे साल के भीतर भी तो नहीं रहा जा सकता?

हरखू को अपना बनाया हुआ घर भा पराया लगन लगा। ऐसा अपमान तो किसी अनजान घर में घुसन पर भा शायद न हा। हरखू को भोमिये की मा की याद बड़ा शिद्दत से सतान लगा। कौन कहता है कि बुढ़ापे में आदमी का औरत की आवश्यकता नहीं रहती ? जवानी में तो सुबह से शाम जहा जी चाहे घूमे हेत की हथाइया घोट, पर इस बुढ़ाप में ? हमउम्रा म स कई तो अनन्त यात्रा पर निकल चुके होते हैं, एक-आध जो बच रहे हैं, उनकी इतनी हिम्मत नहीं कि कहा जा आ सकें। ऐसे में अगर आज भोमिये की मा जिन्दा होती तो ? हरखू इतना अकेला कदापि न होता।

खसू-खस्सू जला हुई तम्बाखू का कठ छोलता धुआ कलजे स जा लगा तो हरखू खासी से उलझ गया। खासा के खखारों क साथ हा हरखू की वैचारिक यात्रा हकीकत के ठास धरातल से टकराई। जली हुई तम्बाखू को झाडकर चिलम खटिया क नीचे सरकाकर वह खाट पर चित्त लेट गया।

हरखू को बुढ़ापा अभी बेदम नहीं कर पाया है। उसकी काया में अभी जान है। पानी का लोटा भरकर पीता है। पर बहू-बेटे की नजरों मे उसके इन कामों का कोई महत्त्व नहीं। उनके हिसाब से हरखू बूढ़ा भी हो गया और साठी गुजरने के साथ सठिया भी गया था।

अक्ल ! जिसका उम्र से गहरा सम्बन्ध है। भले-बुरे की पहचान अनुभव की भट्टी में तापने से हा तो हाती है ? और अनुभव ? अनुभवों को सजोने के लिए उम्र की आवश्यकता हाती है। दिन खाने मे ही अक्ल में इजाफा होता है और इस दृष्टि मे हरखू की अपनी अलग पहचान है। पर बहू-बेटे का यह समझाए कौन ? अपने साथियों और बडे-बुजुर्गो में हरखू की पूछ हुआ करती थी। सगे-सम्बन्धियों से वार्तालाप में हरखू बेजोड था। बिगडी हुई बात सवारना उसक लिए

गल गमाने की तरह था। गातों का गगा हारमन था हरगू कि सामने वाला उसके गाम्जाल में उलझकर रह जाता और उसकी प्रशंसा किए बिना न रहता। हरगू की उस और अनुभव का गगम उसकी आत्म दर्पण में साफ झलकता था।

गड़िया पर लेट हरगू न आगें बन्द कर नाद लेने की कोशिश की पर नींद किमा कि बात थाद हो है कि बुलाया और चला आई? आखें खोल ता साल के खपरैल पर लगा सिरकी की पातियों और उन्हें जाजत स कमे उसा के बनाए सीपों के डारियों की जूण पर अटककर रह जातीं। हरगू के मन म विचारा के गाट उमड़ने लग—कहीं उसकी जिन्दगी भी इन सिरकों की तरह हो ता नहीं बध गई है ? इस विचार में उसे सत्य की झलक मिला। सिरकों की बाता बनाकर उनके जूण बगते समय उसने नहीं सोचा था कि कभी उसकी जिन्दगी भी इन्हा की तरह इसा साल में कैद होकर रह जाएगा। आज हरखू को इनसे अपना सगत करना अच्छा लगा। अब हरखू के जीवन में यह साल खपरैल सिरका और जूण ही तो रह गए हैं जिन्हें वह अपना कह सुख-दुख का बटवारा इन्हीं के साथ हा तो करता है वह ये न होते तो हरखू कहा होता ?

□

आज सुबह से ही घर के आगे बैंड-बाजे बज रहे थे। घर में सगे-सम्बन्धियों की रेलमपेल मची हुई थी। घर का आगन मगल गीतों से गूंज रहा था। हरखू अपनी साल के भीतर स आने-जाने वालों को देख रहा था। घर में क्या हो रहा है ? इसका पता हरखू को नहीं लग पाया। पूछे भी तो किससे? रतनी भी सुबह से नजर नहीं आयी । कुछ भी हो है तो कोई मागलिक कार्य हो गीतों की शुरुआत विनायक से हुई थी, इसके बाद कुलदेवता और अब भी देवी देवताओं के गीत गाये जा रहे थे । सोच अपनी निश्चित सीमा पर आकर ठहर गई तो हरखू को चिलम की तलब सताने लगी। उसने खटिया की लटकती मूज से टुकडा तोडा, गोलाकार कर तिल्ला से जलाया और अगारा बनाकर चिलम तैयार की और खटिया पर बैठ कर पीने लगा।

पेड़ स बीज निकलता है। बीज से पौधा पनपता है। बीज से पनपा पौधा इतना बड़ा और विशाल कब हुआ है कि अपने जन्मदाता पेड़ को शीतल छाया का सुख दे ? धूप स बचा सके ? फिर हरखू भोमिये से ऐसी आशा क्या रखे ? ठीक है कि भोमिये के पैदा होते ही उसकी आखों ने सुखद स्वप्नों की शृखला सजोनी शुरू कर दी थी पर आज अनुभव की परिपक्वता उन सपनों को बचकाना मानकर दरकिनार कर रहा है। पर इन बूढ़ी आखों में उन सपनों की परछाइयां गाहे बगाहे डोलने लगे और उसके अन्तर्मन को आहत कर जाए तो इसमें हरखू का क्या दोष ? टूटा हुआ स्वप्न भी पीड़ादायक तो होता ही है ।

पिताजी, आप एसे ही वैठे हैं? कुछ ढग क कपड ता पहन लिए होते? मेहमान आए हुए है, कुछ ता ध्यान रखना चाहिए अब फटाफट साफा बाध कर तैयार हो जाइए। भोमिया जल्दी में साल क भीतर आया और बाप को सीख-सी देते बोला।

मेहमान किसलिए आए हैं क्या हो रहा है घर मे? हरखू को मौका मिला तो भोमिये से हा पूछ लिया।

रतनी की सगाई की है, सम्बन्धी नेग करने आए हैं।

सम्बन्धी कौन हैं?'

'केऊ वाले है। आप कुछ ढग के कपड, पहनकर तैयार हो जाए। आपको कुछ नहीं करना। सब कुछ मैं अपने-आप कर लूगा। आप क्यों पूछताछ कर रहे हैं ? पूछ कर आपको क्या लेना है ? मैं जो भी करूगा ठीक ही करूगा।

तो मेरे पास क्या लेने आया है ? मेरा कोई काम ही नहीं है तो क्या सजू मैं ? किसके लिए सिर पर पाग सजाऊ? मैं कोई नुमाईश की चीज हू क्या ? जा वेटा, तेरा काम कर और मेरी चिन्ता छोड।'

हरखू की बात से क्या पता भोमिये क मन म शर्म घुमा या बात का बेअक्ल महसूस कर खुद पर ही झुझलाहट आई? चुपचाप साल से निकलकर वह घर के अन्दर चला गया।

हरखू ने भोमिये को गुस्से में कह तो दिया मगर फिर साचा, सम्बन्धी बुलवाएगे तब हठी तो उसकी ही होगी ? खटिया से उठकर हरखू ने सिदूकचा खोली। सफेद-झक धोती-कुरता और पिचरगी पाग निकाल कर पहनी। तैयार हो कर एक नजर अपने आप पर डाली तो लगा जैसे भोमिये की मा निरख रहा होगी। उसके मरन के बाद आज पहला बार हरखू सज रहा था। भोमिये की मा की याद आते ही हरखू की आखे सजल हा उठीं। हरखू ने आखें पौंछी और आसुओं को सायास रोककर खाट पर आ बैठा।

बाजे और मगलगीतों की आवाज बद हो चुकी थीं। सग-सम्बन्धियों के चेहरे भी नजर नहीं आ रहे थे। बुलावे का इन्तजार करते-करते हरखू उथप गया तो पगड़ी उतारकर सिरहाने रखी और खाट पर पसर गया। उसकी निगाहें खपरैल के सिरकों की बाता और जूण के बाच फसे सिरकों क तिनकों मे उलयकर रह गई। बाहर बाखल मे शाम का धुधलका गहराने लगा था। निशा दबे पाव साल को भी अपने अक में भरने को आतुर बढ़ी आ रहा था। ●

साध भगत

यह कटाला झाड़ियों की बाड़ स बना बाड़ा है जो शहर के बाहर की बस्ती में पूर्वी छोर पर मनस अंत में है। इसके बाद वन विभाग के स्वामित्व का बाहड़ है, जिसमें कटाले पेड़-पौधों के अलावा जंगली जानवर रहते हैं। यह बाड़ा साध भगत का है। इसमें खपरैलों की दो कच्ची सालें और एक झोंपड़ा बना हुआ है। आगे कुछ दूर तक गोबरपुता आंगन है। इस घर में चार प्राणी निवास करते हैं। बाबा साध भगत साध की पत्नी रामेता और लड़का हरिया। इस वक्त दोनों सालों में दो दो प्राणी लेटे थे। ऐसा बहुत कम होता है कि रात्रि म दोनो सालें दो-दो प्राणियों को समेटे हुए हो।

रात्रि का तीसरा पहर चल रहा था, पर नींद साध भगत की आखों से कोसों दूर था। एक तो जाड़े का समय और फिर आधा पेट खाली। तिस पर भी चिन्ता यह कि कल के आटे-दाल की जुगत का ठिकाना नहीं यह साध भगत के वश में कहा ? ईश्वर चाहे तब कुछ बात बने फिर रात में साध भगत को सोने की फुर्सत ही कब मिलता है ? जब रात को साध भगत सोता है तो उसका भाग्य भी सोता ही है। पड़े-पड़े साध भगत ने करवट बदली तो रामेती ने पूछा— नींद नहीं आ रही क्या ? फिर उसने करवट बदल कर साध भगत की तरफ मुह कर कहा— जागने से कौन घर मे चून दे जायगा बेटे को भी तो अपने जैसा बना लिया ? कहीं मजूरी करने लायक भी न छोड़ा ' साध ने कोई जवाब नहीं दिया। आखें बंद किए रामेता की पीठ पर हाथ फिराते सीने से सटा लिया। रामेती फिर कुछ नहीं बोली और सोने का यत्न करने लगी।

तीसरा प्रहर खत्म होने को था। अचानक शहर की तरफ से रोने की आवाजें सुनाई पड़ीं। साध भगत ने रामेता के गिर्द लिपटायी बाह को हल्के स अलग किया और चारपाई से उठ गया। साल का दरवाजा खोला तो तीखी ठंड ने उसकी हड्डियों को कंपा डाला। साध भगत ने ठंड की परवाह किए बिना आंगन में आकर अंदाजा लगाया। हवा शहर से इसी तरफ बह रही थी। रोने की आवाज हवा के साथ बहती हुई बहुत निकट स आती जान पड रही थी। साध भगत को पूरा अंदाज नहीं लगा।

पर मुक्त आश्रय मिला। उसने एक नजर बाबा की माल व उढ़क निशान पर डाली और अपनी शाल में घुस गया। बिस्तर म घुमते हा रामेती सिहरकर जाग गई। माध भगत का ठण्डा शरीर उस सहन नहीं हुआ। रोने की आवाजें अब भी आ रहा था, जिन्हें सुनकर रामेता ने माध भगत के ठंडे शरीर की वजह जान ली और फिर ठंड की परवाह न कर माध म लिपट गई।

❑

साध के बाबा सत्सग मडला के अगुवा हुआ करते थे। उन्हीं की सगत म माध भी चला जाया करता था। बाबा पक्की रागिना क माहिर थ। कबार व दूसरे साधु-सत्तों की वाणिया एक से बढ़कर एक उन्हें कठस्थ थीं। पूरे कस्बे में वो हा एकमात्र भजना थ जो मृत्युकाल के भजन किया करते थे। साध तब बहुत छाटा था और इन वाणियों का गूढ़ अर्थ उसकी समझ से बहुत परे था। पर बालसुलभ जिज्ञासावश वह बाबा के साथ चला जाया करता था। सत्सगत में बाबा जब वाणा गाते थे जगना ताऊ ढोल और ढोलक की थाप पर नाचता था। सुनने वाले— 'वाह भगतजी वाह।' किया करते थे और साध का बालमन बाबा की तारीफ सुन खुश हो जाता था। उसके मन में आता कि वह भी गाए और लोगों की वाह वाहा लूटे। इसी धुन में वह बाबा का टेरिया बन गया। उसके कंठ की तारीफ बाबा भी कर दिया करते थे। बाबा के साथ जाते-जाते साध बाबा का अच्छा सगतकार बन गया। उसके कोमल कंठ से निकलती जीवनदर्शन की वाणी श्रोता-दर्शकों को वर्तमान की कुंठाओं से विलग कर ईश्वरभक्ति और आत्मचिंतन में लीन कर देता था। इसी क्रम के चलते साध को एक नाम मिल गया— साध भगत। उसका असली नाम क्या था। यह तो अब खुद साध भगत को भी नहीं मालूम।

बाबा बुढ़ा गया और आवाज ने साथ देना बंद कर दिया, तो साध भगत ही सत्सग मडली का सिरमौर बन गया। सारी रात सत्सग में रहकर भजन वाणी बोलने के बाद दिन के वक्त साध सोया रहता था। और किसी काम को न तो उसने सीखा था और न ही उसकी लगन थी। मरने वाले के घर बारह दिनों की रात में सत्सग करने पर जो कुछ मिल जाता, उसी से उसकी गृहस्थी चलती थी समय पर बाबा ने उसका विवाह कर दिया था, रामेती की सेवा टहल से बाबा का समय भी अच्छा गुजर रहा था। मगर रामेती अपने आप को अकेलेपन से घिरा महसूस करती थी। दिन का समय तो घर के काम काज करते बीत जाता था। पर रात काट खाने को दौड़ती थी। साध रात में सत्सग कर मुह अंधेरे घर आता था। दिशाफारिग हो खाना खाकर सो जाता, शाम को उठकर नहाता-धोता और फिर खाना खाकर सत्सग करने चल पड़ता। सत्सग की वाणियों का अर्थ अब उसे बहुत अच्छी तरह समझ आता था और वाणी को गाने के साथ-साथ वह उन्हें अर्थाकर

जताता भी था। नाद पर नाद और श्रोताओं-टेरिया के जमघट में साध युग का महाराता के शिखर पर आसीन स्वयं कबीर से कम नहीं आंकता था। इन्हीं वाणियों के प्रभाव में घिरे साध ने अपनी मौलिक वाणियों की रचना भी कर डाला था और बाबा का नाम अमर करने की गरज से अन्त में उसने कहत है बाबा सुन रे साधिया का अन्तरा भी जोड़ डाला था। उसके भजन, भजन और वाणी का मिश्रित रूप थे।

कलाकार कला के घेरे से निकलकर दीन-दुनिया की खबर लेने की फुर्सत कहा पाता है जो साध भगत पाता। वह जमाना बदल चुका था जब साध के बाबा भजन हुआ करते थे। जमाने के साथ साध ने जैसे प्रयोग कर वाणी का नया रूप विकसित कर लिया था और अब उसका बेटा जिन्हें अपने अन्दाज से गाता था। उसमें भी बहुत परिवर्तन हो गया था। साध इस परिवर्तन की धारा में बहा जा रहा था। पर, भूल गया कि जमाना भी परिवर्तन के दौर से गुजर कर बहुत तेजी से आगे की ओर जा रहा है इक्कीसवीं सदी में ।

अब यह कस्बा भी शहर बन गया है। शहर, जहा परिचय बहुत धुधला होता है, आत्मीयता और पहचान सिर्फ अर्थप्रधान स्वार्थों पर टिके हुए होते है। चाचा-ताऊ के रिश्ते जहा भाई-साहब, अक्लजा के औपचारिक सबोधनों में सिसकते हैं। साध भगत को भी अब लोग दुख का साथी न मानकर सिर्फ पैसों के लिए रात जगाने वाले के रूप में जानने लगे है। रात की वाह-वाही और दाद चार प्राणियों के पेट की भट्टी शात करने में समर्थ नहीं थी। अब परिवर्तन की लहर में साध के घर सीधा पहुचाने वाले न जाने कितनी दूर बह गए थे।

❑

सुबह होते ही साध ने अपना हारमोनियम सभाल लिया। हरिया ने ढोलक की डोरिया कस लीं रात को मरने वाले के घर से सूचना आ गई थी, उसका अन्तिम सस्कार करने की तैयारिया सुबह होते ही शुरू हो गई थी, ऐसे समय में साध के मन में कई विचार एक साथ घूमते हैं—'आत्मा जीते जी कितना अधिकार जताता है—मेरा घर, मेरा परिवार, मेरे खेत, मेरे खलिहान और उसके मरते ही उसके अपने ही कितना शीघ्र उसके शरीर को, उसके अवशेषों को नष्ट करने लग जाते हैं आत्मा जैसे कभी इस धरा पर था ही नहीं एकदम विलुप्त ' पर ये विचार अर्थी उठने के साथ साथ ही उठते थे। श्मशान तक पहुचते पहुचते जीवन की निरर्थकता साकार होने लगती। चिता की लपटों में घिरे शव के अवशेष ज्यों ज्यों पचतत्त्व में विलीन होते, मन में उठने वाले विचार भी विलीन हो जाते। शव फूक कर घर तक पहुचते-पहुचते फिर वही अहं का भाव

प्रबल हो जाते। साध अपना हारमोनियम और ढोलक मरने वाले के घर छोड कर तीन दिन होने की प्रतीक्षा करने लगता तीसरे दिन मृतक के फूल घर से उठाने के बाद ही सत्संग शुरू होता था। कई बार साध भगत का अपना चेहरा बडा ही बदसूरत लगता था। वह सोचता था कि वह भी कैसा इन्सान है कैसा जीवन है उसका ? लोग लम्बी उम्र की दुआएं करते हैं और वह उनकी मृत्यु की प्रतीक्षा । रोटी के लिए आदमी क्या-क्या करता है । पर, यह चिंतन भी क्षणिक ही होता था। उद्वेलित मन के आवेगों से उठते ऐसे विचार दर्शन के मापदण्डों तक ही खरे थे। व्यवहार में लाने की सोचते ही साध की हिम्मत जवाब दे जाती।

❒

बाबा की तबीयत अचानक बिगड गई थी। साध उनके पास बैठा था, आज का दिन साध के लिए कोई नया सन्देश लेकर आया था। बाबा ने साध का हाथ अपने हाथों में थाम लिया। साध की सवालिया निगाहें बाबा के चेहरे को ताकने लगीं। बाबा ने अपनी उखडती सासों को नियंत्रित कर साध से कहना शुरू किया— बेटा, अब मेरा जाने का समय आ गया है। उम्रभर मै एक विचार से जूझता रहा हू पर आज उसको मूर्त रूप देने का दायित्व तुम्हे सौंप जाना चाहता हू। यह शुरूआत तुम ही कर सकोगे मेरे मरने के बाद यहा बैठक मत लगाना , बारह दिनों के सत्संग में न तो लोग तुम्हें सुख से सोने देंगे और न मेरी कमी को भूलने देंगे। फिर उनकी सेवा-टहल का खर्चा तुम्हें अलग से ढोना पडेगा। मैं खुद लोगों के यहा जाता था तब भी यही सोचता था, पर क्या करता पेशा ही ऐसा था ।

बाबा आप एसी बातें क्यों करते हैं ? कुछ नहीं होगा आपको।'

'हा, बेटा कुछ नहीं होगा मुझे, मरना वास्तव में कुछ नहीं होना है, खैर मैंने अपनी बात कही तुम ऐसा ही करना। मैं इसे ही सत्संग समझूगा।

साध कुछ तय नहीं कर पाया, बाबा ने ऐसा क्यों कहा खर्चे के डर से कहा है या मिथ्या आडम्बर से ऊब कर पर वह बाबा के मरने की क्यों सोच ? ईश्वर करें इनका साया सदा उसके सिर पर रहे रात को बाप-बेटे दोनों सत्संग पर जाते है, तो पीछे घर की चिन्ता तो नहीं रहती साध को आज फिर अपना मन उचटता लगा। बाबा के मरने की बात वह सोचना नहीं चाहता और दूसरों के लिए सच में ही बहुत स्वार्थी होता है आदमी ।'

आज चौथा दिन था साध का भजन करने जाना था। उसने साझ ढलते ही

हरिया को तैयार होने को कहा और गुरु बाबा से इजाजत लेकर रात जगाने चल पड़ा।

आज साध के भजन जम नहीं रहे थे। बाबा के बोल उसके ज़ेहन में बार-बार उठते और भजनों के बोल लड़खड़ा जाते। रात्रि के तीसरे प्रहर में भजनों का ठहराव हुआ था। सभी चाय पी रहे थे। तभी साध भगत को अपने घर की तरफ से इकलौती नारी चीख सुनाई पडी। साध भगत का हाथ सीधा अपने हारमोनियम पर गया। उसने उसे बंद कर हरिया को ढोलक उठाने को कहा और उठकर सभी से हाथ जोड़कर बोला— माफ करना भाई। मरने पर भजन करना ढकोसला है। अच्छा राम-राम। मैं चलता हूं।' उसने हरिया को साथ लिया और घर की तरफ लौट पडा। श्रोताओं-टेरियों का जमघट हैरान निगाहों से उन्हें जाते हुए देखता रह गया।





श्रीभगवान सैनी

जन्म 1965, श्रीडूगरगढ़ (चूरू-राज)

प्रकाशन 'टूटती टहनिया' (हिन्दी कथा-संग्र
'उडीक' (राजस्थानी कविता-संग्रह) प्र
हिन्दी एव राजस्थानी में समान रूप से
प्रकाशित-प्रसारित।

पुरस्कार 'उडाक' पर मुबई का 'घनश्यामदास
साहित्य पुरस्कार'। कुछ कहानिया भी

सम्प्रति राजकीय सेवा में।

सम्पर्क कालूबास, श्रीडूगरगढ़ 331803 (चूरू